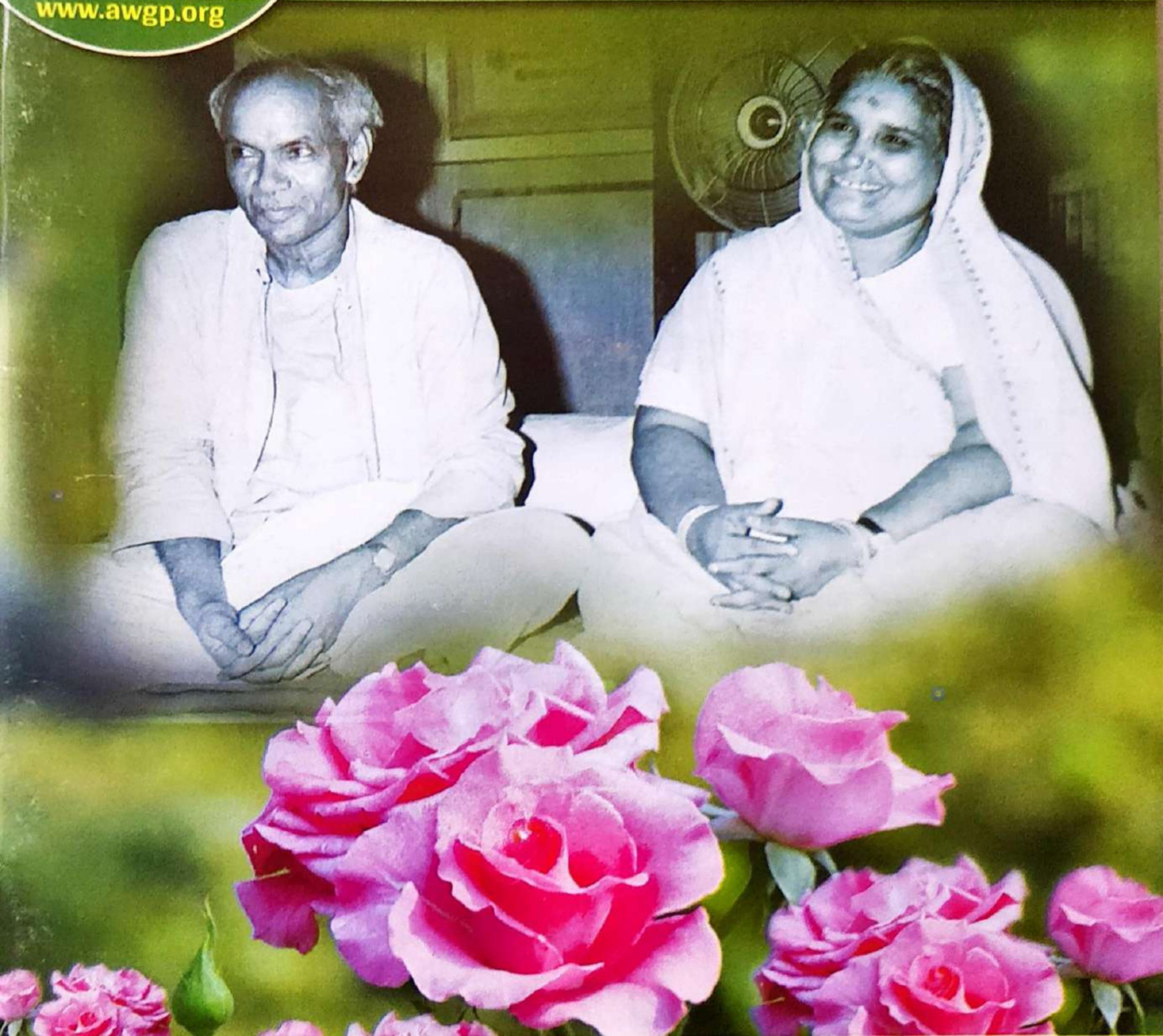
फरवरी
2020
वर्ष—84 | अंक—2
₹—19 प्रति | ₹—220 वार्षिक
www.awgp.org

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति





गायत्री चेतना केंद्र, पुणे (महाराष्ट्र) में आयोजित अखण्ड ज्योति पाठक सम्मेलन



ओडिसा के महाविद्यालयों में आयोजित कन्या कौशल शिविर



'दिया' से संबद्ध गायत्री परिवार के युवा कार्यकर्त्ताओं द्वारा वजीराबाद (दिल्ली) में बाल संस्कारशाला के माध्यम से भावी पीढ़ी को गढ़ने का सत्प्रयास



संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं० (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-ajsansthan@awgp.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 84
अंक	: 02
फरवरी	: 2020
माघ-फाल्गुन	: 2076
प्रकाशन तिथि	: 01.01.2020

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
भारत में आजीवन (बीसवर्षीय)	: 5000/-

दृष्टिकोण

मनुष्य के जीवन में विषम परिस्थितियों के आगमन के संकेत, आंतरिक जीवन में अतृप्ति की और बाह्य जीवन में नियति की उपस्थिति से मिलने लगते हैं। अंतःकरण की गरिमा शुष्क व शिथिल होने लगती है तो मनुष्य के जीवन में अतृप्ति और नियति की आहटें आने लगती हैं। पेड़ की जड़ें मजबूत व गहरी होती हैं तो वे पेड़ को कभी सूखने नहीं देतीं। मौसम अनुकूल न होने पर भी पेड़ हरा-भरा ही बना रहता है। वैसे ही अंतस् में श्रद्धा व मन में विश्वास हो तो अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी हमारी प्रफुल्लता को कोई छीन नहीं सकता है। जीवन में उल्लास सुख-साधनों से नहीं, वरन दृष्टिकोण के बदलने से आता है। जिनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण, उन्नत व उत्कृष्ट होता है—वे कभी विपत्ति व अतृप्ति से त्रस्त नहीं होते, बल्कि अपने जीवन की राहें खोज ही लेते हैं।

भोग-विलास की और आंतरिक आनंद की राहें अलग-अलग हैं। विलास की चाह जिन्हें होती है, वे सुख के साधनों के पीछे दौड़ते-थकते व परेशान होते हैं। उनके न मिल पाने पर अतृप्ति व उनके मिल जाने पर विपत्ति, उनके जीवन की परिभाषा बन जाती हैं; जबकि आनंद की अभीप्सा रखने वालों को किसी के पीछे नहीं दौड़ना पड़ता। वे तो मात्र अपने व्यक्तित्व के परिष्कार में जुटते हैं और परिष्कार की प्रक्रिया से प्राप्त पवित्रता को अनुभूत कर आंतरिक आनंद का रसास्वादन करते हैं। आंतरिक पवित्रता से प्राप्त सौंदर्य व मधुरता की तुलना, किसी सांसारिक वस्तु से नहीं की जा सकती है। बाहर की दौड़ अहंकार की दौड़ है और इसीलिए वह विपत्ति व अतृप्ति का दंड अपने साथ लाती है। अंदर की स्थिरता—दृष्टिकोण को गरिमामय बनाने पर निर्भर है और उसके साथ आंतरिक आनंद का पारितोषिक जुड़ा हुआ है। जीवन का आनंद लेना हो तो उसके लिए अंतर की गहराई में उतरने का, समुद्र के तल से मोती ढूँढ़ लाने का साहस हमें दिखाना होगा, तभी उस साहस की परिणति आत्मिक आनंद की प्राप्ति के रूप में हो पाएगी। ❒

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

स्मित हास्य के साथ गायत्री तपोभूमि में ऋषियुग्म

फरवरी-मार्च, 2020 के पर्व-त्योहार

बुधवार	05 फरवरी	जया एकादशी	सोमवार	09 मार्च	होलिका दहन
रविवार	09 फरवरी	संत रविदास जयंती	मंगलवार	10 मार्च	होली
बुधवार	19 फरवरी	विजया एकादशी	सोमवार	16 मार्च	शीतलाष्टमी
शुक्रवार	21 फरवरी	महाशिवरात्रि	गुरुवार	19 मार्च	पापमोचनी एकादशी
मंगलवार	25 फरवरी	रामकृष्ण परमहंस जयंती	बुधवार	25 मार्च	नवरात्रारंभ/ 'प्रमादी' नवसंवत्सरारंभ
रविवार	01 मार्च	सूर्य षष्ठी	शुक्रवार	27 मार्च	गणगौर
मंगलवार	03 मार्च	होलाष्टक	सोमवार	30 मार्च	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	06 मार्च	आमलकी एकादशी			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

अनिद्रा का मँडराता वैश्विक संकट



इसे एक आश्चर्य का विषय ही मानना चाहिए कि निद्रा या नींद जो जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं एवं मुख्य जरूरतों में से एक है, उसके विषय में जनसामान्य से लेकर वैज्ञानिक समुदाय का ज्ञान निकट के वर्षों तक अत्यंत अल्प रहा है। विगत दो-तीन दशकों में ही इस संदर्भ में गंभीर प्रयास वैज्ञानिक समुदाय द्वारा प्रारंभ किए गए हैं और उनके द्वारा किए गए शोधों के जो परिणाम निकलकर आए हैं, उन्हें अद्भुत एवं विलक्षण ही कहा तथा माना जा सकता है।

मानवीय शरीर की चार नैसर्गिक जरूरतें कही गई हैं, जिनको पूरा करने का प्रयास हर प्राणी निरंतर करता है। भूख लगना, प्यास लगना, प्रजनन करना एवं सोना—इन चारों को वैज्ञानिकों से लेकर आत्मवेत्ता तक प्राणियों की मूलभूत गतिविधियों में मानते रहे हैं। पेट न भर पाने की स्थिति में, प्रजनन न हो पाने की स्थिति में या इन सबके हो पाने की स्थिति में प्राणियों में क्या परिवर्तन घटित होते हैं, इस संदर्भ में साामान्य व्यक्ति से लेकर विद्वानों तक ने बहुत सोचा-विचारा, लिखा-पढ़ा एवं बोला है।

इसे एक विचित्र संयोग ही मानना चाहिए कि निद्रा या नींद, जिसे पूर्ण करने में इनसान अपना एक-चौथाई जीवनकाल लगाता है—उसके विषय में हमारी अब तक की जानकारियाँ बहुत ज्यादा नहीं रही हैं। मात्र विगत कुछ दशकों के प्रयास ही उसके मूल्य एवं महत्त्व की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर पाने में सक्षम हो सके हैं।

जीव जगत् के प्राणियों की जितनी भी खोजें अब तक इस धरती पर हुई हैं, उनमें से प्रत्येक प्रजाति अपनी दैनिक दिनचर्या का एक महत्त्वपूर्ण अंश सोने में या नींद लेने में गुजारती रही है। वैज्ञानिक अब इस सोच में एकमत हैं कि नींद लेने का कार्य, प्राणियों ने इस धरती पर जीवन की उत्पत्ति के साथ ही आरंभ कर दिया था। दूसरे शब्दों में निद्रा क्रमिक विकास के या इवोल्यूशन के प्रथम चरणों में एक कही जा सकती है।

विगत दिनों हुए वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि नींद का पूरा होना हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत जरूरी है। हमारे शरीर का ऐसा कोई अंग नहीं है और हमारे मस्तिष्क की ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है, जिसको नींद लेने से आराम न मिलता हो और साथ-ही-साथ नींद लेने से वे स्फूर्तिवान न हो जाते हों। जब हम नींद ले रहे होते हैं तो उतनी देर में मस्तिष्क हमारे सीखने की क्षमता, स्मृति क्षमता, निर्णय लेने की क्षमता को तरोताजा कर लेता है।

यदि इनमें से किसी को भी बिना नींद लिए करने का प्रयत्न किया जाए तो उसकी क्षमता में 90 प्रतिशत तक की गिरावट आती है। नींद लेते समय जहाँ हमारा मस्तिष्क अपनी प्रणालियों को चुस्त-दुरुस्त कर रहा होता है तो वहीं शरीर के बाकी अंग, जैसे हमारा प्रतिरोधक तंत्र (इम्यून सिस्टम), चयापचय की प्रणालियाँ (मेटाबोलिज्म) इत्यादि भी स्वयं को पूर्णतया नवीन बना लेते हैं। यदि नियमित नींद मिलती रहे तो हृदय से लेकर त्वचा तक के सभी अंग व तंत्र अपना कार्य भली भाँति करते रहते हैं अन्यथा हमारे स्वास्थ्य में गंभीर स्तर की गिरावट देखी जा सकती है।

ये तो अनेकों का व्यक्तिगत अनुभव रहा होगा कि नींद हमारे लिए कितने जरूरी क्रियाकलापों में से एक है। यदि एक रात भी ढंग से नींद न मिल पाए तो हमारे शरीर से लेकर मन की सुव्यवस्था लड़खड़ाने लगती है। प्रश्न उठता है कि क्या नींद न मिले तो आदमी मर जाएगा? निकट अतीत में हुईं चिकित्सकीय खोजें इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में ही देती हैं। इस बात को कहने में अब कोई शंका नहीं कि जितनी कम नींद, उतनी ही कम व्यक्ति की आयु भी हो जाती है।

जब से मानवीय जीवन की व्यस्तताएँ बढ़ी हैं, आहार लेने का समय व तरीके बिगड़े हैं, शारीरिक श्रम कम हुआ है, जीवनशैली विकृत हुई है तथा विषाद व तनाव के कारणों में वृद्धि हुई है, तब से अनिद्रा की बीमारी ने हमारे देखते-देखते एक महामारी का रूप ले लिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) को संभवतया इसी कारण अनिद्रा को एक महामारी के रूप में घोषित करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

चिकित्सकीय परीक्षण बताते हैं कि जो लोग विभिन्न कारणों से 30 या 40 की उम्र में अनिद्रा के शिकार होने लगते हैं, धीरे-धीरे एक दिन उनको किसी भी दवा से नींद आनी पूर्णतया बंद हो जाती है। यदि एक साल तक दवाइयाँ लेते रहने के बाद भी नींद नहीं आती तो शरीर के लगभग सभी अंग अपनी कार्यप्रणाली में बाधा अनुभव करने लगते हैं और एक या दो वर्ष के भीतर ही व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है।

वर्तमान परिस्थितियों में इसे एक सामूहिक दुर्भाग्य के रूप में ही देखना चाहिए कि आज विश्व की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या अनिद्रा की समस्या से जूझती नजर आती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शरीर को सम्यक रूप से चलने देने के लिए प्रतिदिन आठ घंटे की नींद प्रस्तावित की है, परंतु अनेक लोग उतनी नींद प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। यदि हर रात मात्र छह या सात घंटे ही नींद ली जाए तो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता गंभीर रूप से घटने लगती है और इंफेक्शन्स से लेकर कैंसर होने की संभावना दो गुना से चार गुना तक बढ़ जाती है। कम नींद का मिलना अल्जाइमर नामक स्मृतिलोप की बीमारी के होने के प्रमुख कारणों में से एक है।

इतना ही नहीं यदि सप्ताह में एक रात की नींद भी नियमित रूप से अव्यवस्थित रहे तो हमारे रक्त का शर्करा-स्तर बढ़ने लगता है। कुछ महीनों तक ऐसा ही चलता रहे तो मधुमेह को होने से रोका नहीं जा सकता है। निरंतर नींद की कमी धमनियों में रक्तस्राव को भी घटा देती है, जिससे हृदयाघात (हार्ट अटैक) से लेकर पक्षाघात (स्ट्रोक) होने तक की संभावना रहती है। जिन लोगों को नियमित नींद नहीं मिल पाती, उनके रक्त-परीक्षणों से पता चला है कि कम नींद हमारे शरीर के उन हॉर्मोन्स में बढ़ोत्तरी कर देती है, जो हमारी भूख को बढ़ाते हैं तथा उन हॉर्मोन्स को घटा देती है, जो हमारे मस्तिष्क को क्षुधातृप्ति का अर्थात पेट भर जाने का संदेश पहुँचाते हैं। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति पेट भर जाने के बाद भी खाना खाने की चाहत रखता है। इसी कारण कम नींद का मिलना—मोटापे या ओबेसिटी के प्रमुख कारणों में से एक है।

इसके अलावा यदि भरपूर नींद न मिले तो दुर्घटनाओं से लेकर अनेकों अन्य कारण हमारे लिए जानलेवा बन जाते हैं। नींद न मिल पाने पर गाड़ी चलाने से घटने वाली दुर्घटनाएँ, शराब पीकर गाड़ी चलाने से घटने वाली दुर्घटनाओं की तुलना में कई गुना ज्यादा हैं। अकेले अमेरिका में हर घंटे में एक व्यक्ति की मौत पर्याप्त नींद न मिल पाने के कारण घटी दुर्घटना से होती है। इतनी सारी समस्याओं एवं दृश्य दुष्परिणामों के बावजूद मनुष्य अकेला ऐसा प्राणी है, जो जान-बूझकर नींद रोकने की कोशिश करता है। कॉफी पीने से लेकर तेज आवाज के संगीत तक तथा ऐंड्रोइड फोन से लेकर भड़की लाइटों तक ऐसे अनेक तरीके आज इनसान ने ईजाद कर लिए हैं कि जिनका सीधा एवं घोषित दुष्परिणाम हमारी नींद पर पड़ता है।

जबसे कृत्रिम रोशनी की खोजें हुई हैं तब से तो ये दुष्परिणाम कई गुना हो गए हैं। जब तक हमारे पास प्रकाश उत्पन्न करने के कृत्रिम संसाधन नहीं थे, तब तक मनुष्य अपनी नींद का निर्धारण शरीर में स्थित जैविक घड़ी से करता था, जिसे चिकित्सकीय भाषा में बायोलॉजिकल क्लॉक कहते हैं। इसके अनुसार जैसे ही भगवान सूर्य अपनी रश्मियों को समेटते थे और धुँधलका छाता था, वैसे ही हमारे मस्तिष्क में स्थित सुप्राकिआज्मेटिक न्यूक्लियस जो कि मस्तिष्क का वह भाग है, जो नींद लाने वाले हॉर्मोन अर्थात पीनियल ग्लैंड से निकलने वाले मेलेटोनिन का नियंत्रण करता है—उसको यह संदेश मिलता था कि अब रात होने वाली है अत: सोने की तैयारी कर लेनी चाहिए। ऐसा इसलिए कि हमारी आँखें मात्र 380 नैनोमीटर से लेकर 700 नैनोमीटर के वैबलैंथ को देख सकती हैं। नीचे की वैबलैंथ हलकी नीली या बैंगनी किरणों के लिए है तथा ऊपर की सुनहली या रुपहली किरणों के लिए। इसीलिए सवेरे का प्रकाश सुनहला व शाम का धुँधलका हलके बैंगनी या नीले आकाश के रूप में दिखाई पड़ता है।

जब से कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था हुई, तब से शरीर की यह जैविक घड़ी बुरी तरह से गड़बड़ा गई है। जब तक लालटेन इत्यादि का प्रकाश या मशाल का प्रकाश इस्तेमाल में आता था, तब तक इतनी दिक्कत नहीं थी; क्योंकि उससे उतना ज्यादा प्रकाश नहीं निकलता था, जो मेलेटोनिन के स्राव को प्रभावित कर सके। परंतु अब जो एल.ई.डी. लाइटें इस्तेमाल होती हैं ये नींद लाने वाले हॉर्मोन के स्राव को चार से लेकर पाँच घंटे तक के लिए रोक देती हैं; क्योंकि मस्तिष्क यह निर्धारण नहीं कर पाता कि अभी दिन है या रात।

कृत्रिम रोशनी के जलते रहने के कारण मस्तिष्क यह ही समझता है कि अभी दिन है और इसलिए वो उसी भाँति कार्य करता है, जैसा वो दिन की रोशनी में करता है। इसीलिए ज्यादातर लोग जो रात सोते समय तक टीवी, फोन, आईपैड, लैपटॉप इत्यादि पर कार्य करते रहते हैं, जिनमें से प्रत्येक में एल.ई.डी. लगी होती है—इन सभी का दुष्प्रभाव यह होता है कि धीरे-धीरे शरीर नींद आने के समय पर सोने से मना कर देता है। परिणाम स्पष्ट है और हमारी आँखों के सामने है। लगभग सारी-की-सारी जनसंख्या रात 11 या 12 से पहले सोती दिखाई नहीं पड़ती, जिसके कारण प्रतिदिन मिलने वाली नींद के घंटों में भयंकर रूप से कमी आई है।

कारण जो भी हों, परिणाम स्पष्ट हैं और चेतावनी देने वाले हैं। आज सारी मानव जाति अनिद्रा की महामारी से ग्रस्त नजर आती है। यहाँ तक कि 18-20 साल के युवा भी इससे त्रस्त नजर आते हैं। इसका प्रभाव शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर तो पड़ता ही है, हमारी सामूहिक प्रगति पर भी पड़ता है। वैज्ञानिक निष्कर्ष कहते हैं कि यदि हमारी नींद प्रत्येक सप्ताह में दो रात भी बाधित है तो हमारी कार्यक्षमता एक-चौथाई तक कम हो जाती है। यदि संपूर्ण मानवता की कार्यक्षमता एक-चौथाई कम दिखे तो इसे एक वैश्विक संकट में क्यों न गिना जाए? आज की विषम परिस्थितियाँ तो कुछ ऐसी ही कहानी बयाँ करती नजर आती हैं।

हम दिन-प्रतिदिन के कार्यों के दबाव में नींद लेने, बल्कि पर्याप्त नींद लेने के महत्त्व को भूलते जा रहे हैं। ऐसा करते समय हमें याद रखने की जरूरत है कि हम ऐसा करके तमाम तरह की बीमारियों, मानसिक अवसाद, यहाँ तक कि अकाल मृत्यु को आमंत्रित कर रहे हैं। निद्रा हमारी मूलभूत जरूरतों में से एक है। रात को टीवी देर तक देखने व फोन पर मैसेज पढ़ना हमारे जीवन से ज्यादा जरूरी नहीं हो सकता। इसलिए तकनीकी का समझदारी से इस्तेमाल करने, स्वच्छ दिनचर्या विकसित करने, सही आहार व पर्याप्त श्रम करने के साथ-साथ समुचित विश्राम करने, नींद लेते रहने की भी आवश्यकता है। प्रकृति, प्राणी को जन्म लेने से पहले ही नौ महीने गर्भ में सुलाकर संदेश देती है कि हर रात इसी प्रक्रिया को चालू रखा जाए। नींद रहेगी तो जीवन भी रहेगा। ❑

दक्षिण अफ्रीका के एक अश्वेत परिवार में जन्मे लड़के का नाम था—बुकर टी० वाशिंगटन। उन दिनों काले दासों को सोलह-सोलह घंटे काम करना पड़ता था तथा खाने और पहनने की कोई सुविधा न थी। बच्चे 8-10 वर्ष के होते ही काम में जोत दिए जाते। इन्हीं दुर्भाग्यग्रस्तों में बुकर भी था। बच्चे की इच्छा पढ़ने की हुई। अश्वेत लोगों के लिए 590 मील दूर कनवा नगर में एक स्कूल था। पैसा नहीं था। इतनी दूर कैसे जाया जाए। वह रास्ते में मेहनत, मजूरी करता, पैदल चलता वहाँ तक जा पहुँचा। बड़ी कठिनाई से प्रवेश मिला, पर उसने पढ़ने में उतना ही श्रम किया, जितना मालिकों के यहाँ करना पड़ता था। ग्रेजुएट होने के उपरांत उसने नौकरी की इच्छा नहीं की, वरन अपने समुदाय के लिए पढ़ाई की व्यवस्था करने में जुट पड़ा। उसने एक-एक पैसा करके धन-संग्रह किया और एक स्कूल की स्थापना की। आज उसके द्वारा स्थापित स्कूल में सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते हैं। यह सारा प्रयास उस अकेले के पुरुषार्थ का ही प्रतिफल है।

इंद्रिय संयम एवं आध्यात्मिक आदर्श



काम तत्त्व को भारतीय संस्कृति में समग्र रूप में प्रतिपादित किया गया है। एक ओर जहाँ यह सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है, नए जीवन का प्रदाता है, तो वहीं अपनी अति एवं दुरुपयोग के चलते यह विध्वंस एवं जीवन के विनाश का भी कारक माना गया है। परमपूज्य गुरुदेव ने काम को ज्ञानबीज कहा है, जिसका यदि परिष्कार किया जाए तो यह स्वयं में सब कुछ प्रदान करने वाला होता है।

इंद्रिय संयम की जब भी बात होती है तो इसमें काम तत्त्व का ही प्रतिपादन होता है, हालाँकि इसका स्वाद से भी सीधा संबंध है, जिसका बोध हम स्वाद संयम के माध्यम से करते हैं। स्वाद के बाद जीवन-साधना की दृष्टि से काम तत्त्व ही वह है, जिसके संयम, साधना, संघर्ष, पराभव एवं विजयी गाथाओं से हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं। आश्चर्य नहीं कि जहाँ आधुनिक विज्ञान अपने बचपने में काम तत्त्व की आधी-अधूरी समझ के आधार पर अधकचरे निष्कर्ष लिए हुए है, ऋषिचिंतन में इसको लेकर किसी तरह के भ्रम की स्थिति नहीं है।

अपने शास्त्रचिंतन एवं आध्यात्मिक विरासत से अनभिज्ञ पीढ़ी, जो आधुनिक वैज्ञानिक एवं भौतिक चिंतन की गोद में पली-बढ़ी है, उसकी सोच आज भी फ्रायडवादी मनोविज्ञान से प्रभावित है। आएदिन प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ऐसे-ऐसे ऊलजलूल विज्ञापन एवं लेख देखे जा सकते हैं, जो काम-कीचड़ में लथपथ होकर इससे बाहर निकलने का समाधान दिलाते हैं, जो पूर्णतया सच नहीं है।

इसी सोच के चलते एक बड़ा वर्ग इसको अपनी नियति मान लेता है, इसको संयमित, परिष्कृत करने के बजाय इसके हाथ का खिलौना बनकर जीवन के पतन-पराभव एवं दुर्गति की पटकथा लिख रहा होता है और जब तक काम की माया कुछ समझ आती है, तब तक देर हो चुकी होती है। समय रहते इंद्रिय संयम, काम-परिष्कार के दृढ़ कदम उठाए गए होते तो बात कुछ और ही होती।

भारतीय चिंतन में काम तत्त्व—नए जीवन, नई सृष्टि की रचनाशक्ति के रूप में पावन एवं पूजनीय है। जीवन के चार प्रमुख पुरुषार्थों में इसका नाम है तथा धर्म की मर्यादा को इसके साथ जोड़ा गया है तभी यह मोक्ष का माध्यम बनता है, अन्यथा इसकी परिणति बंधन है। धर्महीन काम नागपाश बनकर उसके उपभोक्ता को जकड़कर उसको रोग-शोक, पाप-संताप एवं पतन-पराभव के गर्त में धकेलने के सारे सरंजाम लिए होता है, जिसके लोमहर्षक परिणामों के दिग्दर्शन समाचारों एवं चारों ओर ब्रेकिंग न्यूज के साथ हो रहे नित्यप्रति के विस्फोटों के रूप में किए जा सकते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट रूप से काम को कभी न अघाने वाला, बहुत खाने वाला, महापापी एवं महाबैरी होने की संज्ञा दी गई है और इसको हर हाल में काबू करने व जीतने की हिमायत की गई है। हमारे शास्त्रों में, लोकजीवन में ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं, जो साबित करते हैं कि काम पर विजय असंभव नहीं तथा देव संस्कृति में जितेंद्रियता को जीवन के उच्चतम आदर्शों में एक माना गया है व ऐसे व्यक्तियों को लोकजीवन का आदर्श कहा गया है। महावीर हनुमान, भीष्म पितामह, लक्ष्मण आदि शंकराचार्य, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की लंबी शृंखला यहाँ मौजूद है।

इसी तरह गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी इंद्रियजय का आदर्श भारतीय संस्कृति की एक विशिष्टता कही जा सकती है। भगवान शिव इसके मूर्तिमान रूप हैं, जिनका तृतीय नेत्र काम को भस्म करने की क्षमता रखता है। इसी परंपरा में भगवान राम, भगवान श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर, कबीर, तुलसीदास, रामकृष्ण परमहंस, अरविंद, परमपूज्य गुरुदेव जैसे महापुरुषों की लंबी शृंखला है, जो इस आदर्श के जीवंत प्रतिरूप हैं।

भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि यह क्रमिक रूप में व्यक्ति के उत्कर्ष का मार्ग प्रदर्शित करती है। ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ एवं फिर वानप्रस्थ तथा अंततः संन्यास आश्रम इसके क्रमिक सोपान माने गए हैं। व्यक्ति को जीवन के बढ़ते पड़ाव के साथ क्रमशः इंद्रियों पर विजय की उच्चतर कक्षा में प्रवेश करना होता है। काम का ज्ञान, भक्ति एवं प्रेम

में रूपांतरण जिसका धर्म है जो न केवल संभव है, बल्कि योगसाधकों, संन्यासियों एवं सद्गृहस्थों का आदर्श भी होता है।

आश्चर्य नहीं कि भारतीय साधनापद्धति में ब्रह्मचर्य का विशेष महत्त्व माना गया है। शास्त्रों में स्पष्ट है कि कामरूपी शक्ति का दमन संभव नहीं, न ही यह स्वस्थ प्रक्रिया है। इसका दमन तमाम तरह के मनोविकारों एवं विकृतियों को जन्म देता है, साथ ही इसका असंयमित एवं अमर्यादित उपभोग भी घातक है। इसके संदर्भ में मध्यम मार्ग का अनुसरण ही सर्वसाधारण के लिए उचित है। जीवन के उच्च ध्येय, आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि एवं जीवनशैली के साथ इसका सृजनात्मक नियोजन किया जा सकता है।

निस्संदेह आज के वातावरण में छाया वैचारिक प्रदूषण, मीडिया में निर्बाध रूप से परोसी जा रही अश्लीलता के बीच भारी विवेक एवं गहरी समझ ही काम की माया के पार लगा सकते हैं और आध्यात्मिक रूप से प्रदीप्त आदर्शों के सत्संग व उनके सृजित साहित्य के प्रकाश में ही यह विवेक-दृष्टि विकसित होती है व धारणा दृढ़ होती है कि काम का परिमार्जन एवं रूपांतरण संभव है।

इंद्रिय संयम की आभा से प्रदीप्त आदर्शों के जीवन व उदाहरण उस वैचारिक आस्था को पनपाने में सहायक होते हैं कि इंद्रिय संयम एवं आत्मजय किस तरह जीवन में अजस्र अनुदानों के रूप में फलित होते हैं। आध्यात्मिक आदर्श से हीन रोलमॉडल ऐसा भाव जगाने में असमर्थ होते हैं, बल्कि जीवन के प्रति एक भ्रमित दृष्टि ही देने वाले होते हैं। अतः काम के परिष्कार एवं रूपांतरण के लिए सही आदर्श का चयन अभीष्ट है। शिष्य के लिए समर्थ गुरु ही उसका आध्यात्मिक आदर्श होता है, जिसका स्वाध्याय, सत्संग, श्रवण, चिंतन, मनन एवं ध्यान—इंद्रिय संयम का पथ प्रदर्शित करता है। ❑

लोमश ऋषि ने अपने पुत्र शृंगी को अपने से भी उच्च कोटि का ऋषि बनाने के लिए उनको शिक्षा-साधना के अतिरिक्त आहार-विहार का विशेष रूप से संरक्षण किया। उन्हें आश्रम में उत्पादित अन्न-फल ही खिलाए जाते थे। नारी का संपर्क तो दूर, उसके संबंध में उन्हें जानकारी तक नहीं होने दी। दशरथ और वसिष्ठ इस प्रबल अनुशासन की परीक्षा लेने गए। अप्सराओं के हाथों मिष्टान्न भेजा। उन्होंने नारियाँ कभी देखी न थीं, सो उनका परिचय पूछा। उत्तर मिला—''हम भी ब्रह्मचारी विद्यार्थी हैं। हमारा गुरुकुल शीतप्रधान क्षेत्र में है। सो बड़ी आयु तक दाढ़ी-मूँछ नहीं आतीं। प्राणायाम अधिक करने से हमारे शरीर भिन्न हो गए हैं।'' मिष्टान्न दिए और कहा—''ये हमारे आश्रम के फल हैं।'' शृंगी ऋषि ने उनकी बात अक्षरशः सही मानी और पिता को सारा विवरण बताया। वे देखने बाहर आए तो अप्सराओं के साथ दशरथ और वसिष्ठ खड़े दीखे। हेतु बताया गया कि दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराने योग्य सामर्थ्यवान वाणी इन दिनों शृंगी ऋषि की है। यंत्रवत् श्लोक पढ़ने वाले तो असंख्यों हैं।

शृंगी ऋषि के द्वारा जो यज्ञ हुआ, उससे चार राजकुमार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में ऐसे जन्मे, जिन्होंने इतिहास को धन्य कर दिया। ब्रह्मतेज अर्जित करने के लिए साधना ही नहीं, इंद्रियनिग्रह भी आवश्यक है। शृंगी ऋषि ने यह सब अपने पिता द्वारा प्रदत्त उच्चस्तरीय शिक्षण से ही सीखा एवं श्रेष्ठ तपस्वी का पद पाया।

धर्म चक्रवर्ती ही है असली चक्रवर्ती

पुष्य नाम के एक व्यक्ति को सामुद्रिक विद्या का बहुत अच्छा ज्ञान था। वह व्यक्ति मार्ग पर पड़ने वाले लोगों के पदचिह्नों को देखकर उनके भूत, भविष्य व वर्तमान जीवन के विषय में सब कुछ बताने में समर्थ था। वह जिस किसी भी मार्ग पर चल रहा होता, उस मार्ग पर पड़े व्यक्तियों के पदचिह्नों को बहुत ही बारीकी से देखा करता और उन पदचिह्नों को देखकर वह तुरंत ही समझ जाता कि उन पदचिह्नों में कौन से पदचिह्न किसी पावन, पुनीत व बुद्ध पुरुष के हैं, कौन से पदचिह्न राजा-महाराजाओं के हैं, कौन से चिह्न किसी अनाचारी, अत्याचारी या दुराचारी व्यक्ति के हैं और कौन से पदचिह्न के व्यक्ति का जीवन कैसा होगा? किसकी कितनी आयु होगी, कब किसकी मृत्यु होगी? कौन से पदचिह्न नर या नारी के हैं? आदि।

एक दिन अचानक पुष्य नामक वह प्रसिद्ध सामुद्रिक किसी मार्ग से होकर जा रहा था। वह अपनी ही धुन में जा रहा था कि तभी उसकी नजरें किसी पदचिह्न को देखकर ठिठक-सी गईं। हजारों पदचिह्नों को देखते-देखते उसकी नजर किन्हीं ऐसे पदचिह्नों पर पड़ गई, जो अक्सर देखने को नहीं मिलते, जो बहुत ही मुश्किल से किसी भाग्यवान, पुण्यवान व्यक्ति को देखने को मिलते हैं। पुष्य समझ गया कि ये पदचिह्न किसी सामान्य, साधारण व्यक्ति के हो ही नहीं सकते। ये पदचिह्न अवश्य ही किसी असाधारण व्यक्ति के हैं। ऐसे पदचिह्नों वाला व्यक्ति अवश्य ही कोई चक्रवर्ती सम्राट होगा। पुष्य ने यह बात वहाँ उपस्थित कई लोगों को बताई, पर किसी को उसकी बात पर यकीन नहीं हुआ। लोगों ने कहा, भला कोई नंगे पैर सड़क पर घूमने वाला व्यक्ति चक्रवर्ती कैसे हो सकता है। पुष्य को सामुद्रिक शास्त्र पर पूरा भरोसा था। सो पुष्य ने कहा कि यदि मेरी बात गलत है तो अवश्य ही सामुद्रिक शास्त्र भी गलत होगा।

सचाई का पता लगाने के लिए पुष्य उन पदचिह्नों के पीछे-पीछे चल पड़ा। उन पदचिह्नों का पीछा करते-करते पुष्य बहुत दूर निकल आया। जहाँ उन पदचिह्नों का अंत हुआ, वहाँ उसने देखा कि कोई भिक्षु ध्यान में मग्न बैठा है। वह व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि भगवान महावीर थे। पुष्य उनकी बगल में बैठा रहा। जब घंटों बाद महावीर ध्यान से बाहर आए तो उन्होंने देखा उनके पास कोई व्यक्ति बैठा है।

महावीर की आँखें खुलते ही पुष्य ने पूछा—''भंते आप अकेले ही हैं?'' भगवान महावीर ने कहा—''इस दुनिया में जो आता है, वह अकेले ही आता है और अकेले ही जाता है, उसका साथ दूसरा कोई भी नहीं देता।'' ''नहीं भंते! मैं तत्त्व की नहीं, व्यवहार की बात कर रहा हूँ।''—इसलिए मैंने आपसे पूछा, कि क्या आप अकेले हैं? महावीर बोले—''वत्स! व्यवहार की भूमिका पर मैं अकेला नहीं हूँ।'' ''पर भंते! आप परिवारविहीन होकर भी अकेले कैसे नहीं हैं?''—पुष्य ने फिर प्रश्न किया। तब महावीर फिर बोले—''वत्स! मेरा परिवार मेरे साथ है।'' ''वह कहाँ है भंते!''—पुष्य ने फिर पूछा, तो महावीर बोले—''वत्स! संवर (निर्विकल्प ध्यान) मेरे पिता हैं, अहिंसा मेरी माता है, ब्रह्मचर्य मेरा भाई और अनासक्ति मेरी बहन है। शांति ही मेरी प्रिया है, विवेक मेरा पुत्र है, क्षमा मेरी पुत्री है, उपशम मेरा घर है, सत्य ही मेरा मित्र है। ऐसा पूरा परिवार मेरे साथ निरंतर घूम रहा है, फिर मैं अकेला कैसे हूँ।''

पुष्य ने कहा—''भंते! मैं सचमुच बड़ा ही आश्चर्यचकित हूँ कि आपके पदचिह्न व आपके शरीर के लक्षण आपके चक्रवर्ती होने की सूचना देते हैं और आपकी चर्चा, आपकी जीवनशैली आपके साधारण व्यक्ति होने की सूचना दे रही है।'' प्रत्युत्तर में भगवान महावीर ने पुष्य से प्रश्न किया—''अच्छा वत्स! बताओ, चक्रवर्ती कौन होता है?''

पुष्य ने कहा—''भंते! जिसके आगे-आगे चक्र चलता है। जिसके पास बारह योजन में फैली सेना को त्राण देने वाला छत्ररत्न होता है। जिसके पास चर्मरत्न होता है, जिससे प्रातः बोया हुआ बीज शाम को पक जाता है। वही चक्रवर्ती है।''

भगवान महावीर बोले—''वत्स! तुम ऊपर-नीचे, बाएँ-दाएँ कहीं भी देखो, धर्म का चक्र मेरे आगे चल रहा है। आचार मेरा छत्ररत्न है, जो समस्त मानव जाति को एक साथ त्राण देने में समर्थ है। भावना-योग मेरा चर्मरत्न है। जिसमें जिस क्षण बीज बोया जाता है, उसी क्षण वह पक जाता है। क्या मैं चक्रवर्ती नहीं हूँ? क्या तुम्हारे सामुद्रिक शास्त्र में धर्म-चक्रवर्ती का अस्तित्व नहीं है।'' पुष्य ने कहा—''भगवन्! मेरा संदेह आज निवृत्त हो गया। मैं आज सचमुच चक्रवर्ती होने का असली अर्थ समझ गया।''

❑

रूस के राजा अलेग्जेंडर अक्सर अपने देश की आंतरिक दशा जानने के लिए वेश बदलकर पैदल घूमने जाया करते थे। एक दिन घूमते-घूमते एक नगर में पहुँचे, वहाँ का रास्ता उन्हें मालूम न था। राजा रास्ता पूछने के लिए किसी व्यक्ति की तलाश में आगे बढ़े। आगे उन्होंने एक हवलदार देखा। राजा ने उसके पास जाकर पूछा—''महाशय! अमुक स्थान पर जाने का रास्ता बता दीजिए।'' हवलदार ने अकड़कर कहा—''मूर्ख! तू देखता नहीं, मैं सरकारी हाकिम हूँ, मेरा काम रास्ता बताना नहीं है। चल हट, किसी दूसरे से पूछ।'' राजा ने नम्रता से पूछा—''यदि सरकारी आदमी भी किसी यात्री को रास्ता बता दे तो कुछ हर्ज थोड़ा ही है। मैं किसी दूसरे से पूछ लूँगा, पर इतना तो बता दीजिए कि आप किस पद पर काम करते हैं।'' हवलदार ने और ऐंठते हुए कहा—''अंधा है क्या, मेरी वर्दी को देखकर पहचानता नहीं कि मैं कौन हूँ?'' अलेग्जेंडर ने कहा—''शायद आप पुलिस के सिपाही हैं।'' उसने कहा—''नहीं, उससे ऊँचा।'' राजा—''तब क्या नायक हैं?'' हवलदार—''उससे भी ऊँचा।''

राजा—''हवलदार हैं?'' हवलदार—''हाँ, अब तू जान गया कि मैं कौन हूँ, पर यह बता कि इतनी पूछताछ करने का तेरा क्या मतलब और तू कौन है?'' राजा ने कहा—''मैं भी सरकारी आदमी हूँ।'' सिपाही की ऐंठ कुछ कम हुई, उसने पूछा—''क्या तुम नायक हो?'' राजा ने कहा—''नहीं, उससे ऊँचा।'' हवलदार—''तब क्या आप हवलदार हैं?'' राजा—''उससे भी ऊँचा।'' हवलदार—''दारोगा?'' राजा—''उससे भी ऊँचा।'' हवलदार—''कप्तान?'' राजा—''उससे भी ऊँचा।'' हवलदार—''सूबेदार।'' राजा—''उससे भी ऊँचा।'' अब तो हवलदार घबराने लगा, उसने पूछा—''तब आप मंत्री जी हैं?'' राजा ने कहा—''भाई! बस, एक सीढ़ी और बाकी रह गई है।'' सिपाही ने गौर से देखा तो सादा पोशाक में बादशाह अलेग्जेंडर सामने खड़े हैं। हवलदार के होश उड़ गए वह गिड़गिड़ाता हुआ बादशाह के पाँवों पर गिर पड़ा और बड़ी दीनता से अपने अपराध की माफी माँगने लगा। राजा ने मीठी वाणी में कहा—''भाई! तुम पद की दृष्टि से कुछ भी हो, पर व्यवहार की कसौटी पर बहुत नीचे हो। यदि ऊँचा बनना चाहते हो तो पहले मनुष्य बनो, सहनशील व नम्र बनो, अपनी ऐंठ कम करो; क्योंकि तुम जनता के सेवक हो इसलिए तुम्हारी तो यह विशेष जिम्मेदारी है।'' वस्तुतः मानवीय गरिमा की सबसे बड़ी कसौटी है—विनम्रता एवं निरहंकारिता।

पर्व विशेष (महाशिवरात्रि पर्व पर)

सृजन व संहार हैं शिव



'शिव' शब्द के 'श' अक्षर में सुखशयन का समाधि सत्य है। 'इ' में त्रितापहारिणी शक्ति है। 'व' अक्षर में अमृतवर्षा समायी है। तभी तो शिव में कल्याण की शाश्वतता और निरंतरता है। यही सत्य, शिव शब्द का सम्यक अर्थ है। शिव में जीवन और जगत् दोनों हैं। जब जीवन व जगत के प्रत्येक घटनाक्रम में अपने कल्याण की शाश्वतता व निरंतरता की सतत अनुभूति होने लगे, तब समझो कि शिव तत्त्व की अनुभूति होने लगी।

शिव में विवेक व वैराग्य, दोनों संपूर्णता में समाविष्ट हैं। शिव नाम स्मरण होता रहे, तो स्वत: ही विवेक का तृतीय नेत्र खुल जाता है। साथ ही अंतश्चेतना दुर्गुणों, दुष्प्रवृत्तियों से विमुख होकर वैराग्य की ओर अग्रसर हो जाती है। शिव ही सृजन व संहार हैं। उनके लास्य में सृष्टि और उसकी समस्त सकारात्मकता का सृजन है, तो उनके तांडव में संपूर्ण नकारात्मक व असुरता का संहार समाहित है। शिव में शास्त्र व संस्कृति, दोनों समाये हैं। शिव-शिव कहते हुए, शिव का ध्यान करते हुए चित्त में उत्पन्न प्रकाश, शास्त्रों का बोध पाने की एवं शास्त्र रचने की सहज सामर्थ्य प्रदान करता है। साथ ही शिव की चेतना से उत्पन्न हुए एकता, समता व शुचिता के गुण मानव की सर्वोच्च संस्कृति का निर्माण करते हैं।

महाशिवरात्रि पर्व का इसीलिए विशेष महत्त्व है। महाशिवरात्रि का महापर्व फाल्गुन माह की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को मनाया जाता है। वैसे तो हिंदू ग्रंथों तथा मान्यताओं के अनुसार भगवान शिव को प्रत्येक माह की चतुर्दशी तिथि प्रिय है, परंतु सभी चतुर्दशी तिथियों में फाल्गुन माह की चतुर्दशी तिथि भगवान शिव को अतिप्रिय है। सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण तीनों गुणों में से तमोगुण की अधिकता दिन की अपेक्षा रात्रि में अधिक है। इस कारण भगवान शिव ने अपने निराकार के प्रतीक लिंग के प्रादुर्भाव के लिए फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की मध्यरात्रि को चुना।

महाशिवरात्रि पर्व का महत्त्व सभी पुराणों में मिलता है। गरुड़ पुराण, पद्म पुराण, स्कंद पुराण, शिव पुराण तथा अग्नि पुराण सभी में महाशिवरात्रि पर्व की महिमा का वर्णन मिलता है। शिवरात्रि पर्व के बारे में केवल एक प्रकार की कथा नहीं है; कई कथाएँ हैं, परंतु सभी कथाओं का स्वरूप तथा वर्णन समान ही है। इस दिन व्यक्ति व्रत रखते हैं तथा शिव महिमा का गुणगान करते हैं और शिव भगवान की बिल्वपत्रों से पूजा-अर्चना करते हैं। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार इस सृष्टि से पहले सत् और असत् नहीं थे, केवल भगवान शिव थे।

महाशिवरात्रि का पर्व केवल दिखावे मात्र का पर्व नहीं है। न ही यह दूसरों की देखा-देखी मनाने वाला पर्व है। यह अत्यंत विशिष्ट एवं आध्यात्मिक पर्व है। इसीलिए इसे महाशिवरात्रि कहा गया है। शिव को महाकाल कहा गया है। परमेश्वर के तीन रूपों में से एक रूप की उपासना महाशिवरात्रि के दिन की जाती है। मनुष्य को भगवान के तीन रूपों में से एक रूप का सरल तरीके से उपासना करने का वरदान महाशिवरात्रि के रूप में मिला है। इस पर्व के बारे में गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान राम के मुख से कहलवाया भी है—

सिव द्रोही मम भगत कहावा।
सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥

इस पर्व के महत्त्व को शिवसागर में और अधिक महत्ता मिली है।

धारयत्यखिलं दैवत्यं
विष्णु विरंचि शक्तिसंयुक्तम्।
जगदस्तितवं यंत्रमंत्रं
नमामि तंत्रात्मक शिवम्॥

इसका अर्थ है—विविध शक्तियाँ, विष्णु तथा ब्रह्म जिनके कारण देवी व देवता के रूप में विराजमान हैं, जिनके कारण जगत का अस्तित्व है, जो यंत्र, मंत्र हैं, ऐसे तंत्र के रूप में विराजमान भगवान शिव को नमस्कार है।

महाशिवरात्रि पर्व का ज्योतिषीय महत्त्व भी है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार चतुर्दशी तिथि को चंद्रमा बहुत क्षीण

अवस्था में पहुँच जाता है। चंद्रमा के अंदर सृष्टि को ऊर्जा देने की सामर्थ्य नहीं होती है। बलहीन चंद्रमा अपनी ऊर्जा देने में असमर्थ होता है। चंद्रमा मन का कारक ग्रह है। इसी कारण मन के भाव भी चंद्रमा की कलाओं के जैसे घटते-बढ़ते रहते हैं। कई बार व्यक्ति का मन बहुत अधिक दु:खी होता है और वह मानसिक कठिनाइयों का सामना करता है तो उसे भगवान शिव की भक्ति करनी आवश्यक है। वैसे तो प्रत्येक मास शिवरात्रि के दिन भगवान शिव की पूजा करने से चंद्रमा बलशाली होता है, परंतु यदि प्रत्येक माह पूजन नहीं किया जा सकता है तब महाशिवरात्रि के दिन भगवान शिव का विधिवत् तरीके से पूजन अवश्य ही किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त सूर्यदेव भी महाशिवरात्रि तक उत्तरायण में आ चुके होते हैं। इस समय ऋतु-परिवर्तन का समय भी होता है। ऋतु-परिवर्तन के कारण यह समय अत्यंत शुभ माना गया है। यह समय वसंत ऋतु के आगमन का समय है। वसंत काल के कारण मन उल्लास तथा उमंगों से भरा होता है। इसी समय कामदेव का भी विकास होता है। इस कारण कामजनित भावनाओं पर अंकुश केवल भगवान की आराधना करने से ही संभव है। भगवान शिव को काम-निहंता माना गया है। अत: इस ऋतु में महाशिवरात्रि के दिन उनका पूजन करने से कामजनित भावनाओं पर साधारण मनुष्य अंकुश लगा सकता है। इस समय भगवान शिव की आराधना सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। भारतवर्ष के बारह ज्योतिर्लिंगों का संबंध ज्योतिषीय दृष्टिकोण से बारह चंद्र राशियों के साथ माना गया है।

महाशिवरात्रि के बारे में कहा गया है कि जिस शिवरात्रि में त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावस्या तीनों ही तिथियों का स्पर्श होता है—उस शिवरात्रि को अति उत्तम माना गया है। महाशिवरात्रि के विषय में अनेक मान्यताएँ हैं। उनमें से एक मान्यता के अनुसार—भगवान शिव जी ने इस दिन ब्रह्मा के रूप में भद्र रूप में अवतार लिया था। इस दिन प्रलय के समय प्रदोष के दिन भगवान शिव तांडव करते हुए समस्त ब्रह्मांड को अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म कर देते हैं। इस कारण इसे महाशिवरात्रि कहा गया है। इसी कारण महाशिवरात्रि को कालरात्रि भी कहा जाता है। भगवान शिव सृष्टि के विनाश तथा पुन: स्थापना, दोनों के मध्य एक कड़ी जोड़ने का कार्य करते हैं। प्रलय का अर्थ है—कष्ट, और पुन: स्थापना का अर्थ है सुख। अत: ज्योतिषशास्त्र में भगवान शिव को सुख देने का आधार माना गया है, इसीलिए शिवरात्रि पर अनेकों ग्रंथों में अनेक प्रकार से भगवान शिव की आराधना करने की बात कही गई है। अनेक प्रकार से अनुष्ठान करने का महत्त्व भी बताया गया है।

मानवीय अज्ञान में बद्ध जीव की अंतिम परिणति है—शिव, शिवत्व व शिवतत्त्व में समर्पण। उनसे साधक की यही पुकार रहती है—"हे भगवान शिव! मैं कब गंगाजल में स्नानकर पवित्र फल-फूलों से आपकी पूजा करता हुआ पर्वत की गुफा में शिलाखंड के आसन पर बैठकर आपके परात्पर, परब्रह्मस्वरूप में ध्यान लगाऊँगा? हे महेश्वर! आपकी कृपा से प्राप्त निर्मलमति से इहलौकिक, पारलौकिक फल की समस्त कामनाओं को छोड़कर अपने आप में संतुष्ट रहकर गुरु के उपदेशों में तत्पर हो आपकी कृपा से एकमात्र ध्यानमार्ग में कब अडिग-अविचल हो पाऊँगा? कब अपनी आर्त्तवाणी से शिव-शिव-शिव का उच्चारण करते हुए आपके ही चरणों में लीन हो समस्त सांसारिकता व सांसारिक दु:खों से छुटकारा पा सकूँगा?" यह पुकार ही साधक को भगवान शिव के कल्याणकारी स्वरूप का दर्शन कराती है। उसी स्वरूप की प्राप्ति के लिए इस महापर्व को उत्सव रूप में मनाया जाता है। ❑

शिव का सच्चा उपासक वही है, जो अपने मन की स्वार्थभावना को त्यागकर परोपकार की मनोवृत्ति को अपनाता है। जब हमारे मन में यह विचार उत्पन्न होने लगता है तो हम अपने स्वजनों के साथ झूठ, छल, कपट, धोखा, बेईमानी, ईर्ष्या, द्वेष आदि से मुक्त होने लगते हैं। यदि शिवरात्रि व्रत के दिन इस महान पथ का अवलंबन नहीं लेते तो शिव का व्रत और पूजन केवल लकीर पीटना मात्र रह जाएगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

जलवायु का संरक्षण—जीवन का संरक्षण



वर्तमान में मानवता के लिए सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण संरक्षण की है। पर्यावरण यानी हमारी आबोहवा पर संकट, जलवायु पर संकट। भारत देश में भगवान की पूजा-आराधना की जाती है। वास्तव में ये भगवान ही भारत के पंचमहाभूतों को अपने में समेटे हुए हैं। भगवान=भ+ग+व+अ+न। भ से भूमि, ग से गगन, व से वायु, अ से अग्नि और न से नीर। इन शब्दों में कैसा अद्‌भुत संयोग है कि पंचमहाभूतों के रूप में भगवान ही हमें अपने आँचल में समेटे हुए हैं।

वे हमारा रक्षण, पोषण व संरक्षण करते हैं, लेकिन हमने ही उनके इस स्वरूप को नहीं समझा और न ही उनके पोषण व संरक्षण का ध्यान रखा। इसके विपरीत भाँति-भाँति के प्रदूषणों को इनमें घोलते गए और आज स्थिति यह है कि हमारा पर्यावरण, हमारे पंचमहाभूत बुरी तरह से प्रदूषण से प्रभावित हैं और हमें भी इससे नुकसान पहुँच रहा है; क्योंकि हम इस पर्यावरण में रहते हैं, इन पंचमहाभूतों से ही हमारा शरीर निर्मित है।

हमारे पंचमहाभूतों में यदि संतुलन, सामंजस्य है तो इससे हमारा पर्यावरण समृद्ध व स्वस्थ होता है, लेकिन इन पंचमहाभूतों में यदि असंतुलन व प्रदूषण है, तो इससे हमारे पर्यावरण में भाँति-भाँति के उपद्रव होते हैं। आज भूमि, जल, वायु, आकाश व अग्नि—इन पाँचों तत्त्वों में असंतुलन है और इनमें प्रदूषण तेजी से घुलता जा रहा है। इसी कारण हमारी प्रकृति असंतुलित है। भूमि में प्रदूषण घुलने से भूमि बंजर हो रही है, जहरीली हो रही है। जल में प्रदूषण होने से जल विषाक्त हो रहा है और जल के लगातार दोहन से भू-जल का स्तर भी कम हो रहा है। कारखानों, उद्योगों व वाहनों से निरंतर छोड़ी जाने वाली प्रदूषित गैसों के कारण वायु में प्रदूषण घुल रहा है। अग्नि के असंतुलन का परिणाम ग्लोबल वार्मिंग है, वातावरण का तापमान गरमियों में इतना बढ़ जाता है कि वनों में भीषण आग लगने की घटनाएँ सामने आती हैं।

अब तो आसमान भी प्रदूषण से अछूता नहीं रहा है; क्योंकि वहाँ भी अनगिनत सेटेलाइट छोड़े जा रहे हैं, जो आकाश तत्त्व को प्रभावित कर रहे हैं। इस तरह हमारे पंचमहाभूत हमारे ही कृत्यों द्वारा प्रदूषण के शिकार हो रहे हैं और हमारे जीवन को भी ये बुरी तरह से प्रभावित कर रहे हैं। अगर हमें अपने पर्यावरण को बचाना है, जलवायु का संरक्षण करना है तो इसके लिए सबसे पहले उन कारकों को रोकना होगा, जिनके कारण हमारी जलवायु बुरी तरह से प्रभावित हो रही है और उन कारकों को बढ़ावा देना होगा, जिनके कारण हमारी जलवायु समृद्ध, संपन्न, स्वस्थ व संतुलित होती है।

जलवायु को सबसे पहले प्रभावित किया, बढ़ती जनसंख्या के आवास हेतु वनों-जंगलों की अंधाधुंध कटाई के साथ होने वाले शहरीकरण ने। शहरों में उद्योगों व कारखानों का जो निर्माण हुआ, उनसे लगातार जहरीला धुआँ वातावरण में जाता रहा। इन जगहों से निकले हुए अपशिष्ट पदार्थों को भूमि में या जल में छोड़ दिया जाता है, जिससे भूमि बंजर होती है और जल प्रदूषित होता है। यदि इन उद्योगों व कारखानों के बजाय लघु कुटीर उद्योग शुरू किए जाएँ तो इससे रोजगार भी बढ़ेगा और इतना प्रदूषण भी नहीं होगा।

अब उपाय यही है कि खोदी गई खाई को पाटा जाए, अन्यथा हम इसी खाई में गिरेंगे और नष्ट हो जाएँगे। इसके लिए हमें हरियाली बढ़ानी होगी, वन-जंगलों की संपदा को पुन: समृद्ध करना होगा, जल को प्रदूषणमुक्त करने के उपाय करने होंगे और भूमि की उर्वरता को बढ़ाने के तरीके अपनाने होंगे।

भूमि में लगातार जल का स्तर कम हो रहा है। बारिश के मौसम में जहाँ लोग बाढ़ से अतिशीघ्र प्रभावित हो जाते हैं, वहीं सरदी के मौसम की शुरुआत में ही जलसंकट की समस्या से जूझने लगते हैं और गरमी का मौसम आने तक यह समस्या और बड़ी हो जाती है, तो क्यों न बारिश के मौसम में ही वर्षाजल के संरक्षण के उपाय किए जाएँ। हम इस जल का संग्रह करें, इसे विभिन्न उपायों से धरती के गर्भ

तक पहुँचाएँ, जिससे सूरज की किरणें इस जल को वाष्पीकृत न कर सकें।

जल को सहेजने की प्रक्रिया से भूमि में नमी बनी रहेगी और धरती की प्यास भी इससे बुझेगी और धरती माँ की कृपा भी मिलेगी अर्थात हरियाली भी बढ़ेगी। यह हरियाली प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा वातावरण में से कार्बन को अपने अंदर सोख लेती है और ऑक्सीजन का उत्सर्जन करके हमारी जलवायु व पर्यावरण को संतुलित करती है। इससे पर्यावरण सुधरता है और धरती पर पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले तत्त्व स्वत: कम होने लगते हैं एवं पर्यावरण को समृद्ध करने वाले तत्त्व बढ़ने लगते हैं।

हमारे पंचमहाभूत आपस में एकदूसरे से जुड़े हुए हैं। एक से दूसरे तत्त्व को समृद्ध व संतुलित किया जा सकता है, लेकिन इन पंचमहाभूतों में सबसे प्रमुख तत्त्व जल है। इसीलिए तो कहा गया है, जल ही जीवन है। जल नहीं तो जीवन नहीं। अन्य ग्रहों पर यदि जीवन की तलाश की जाती है, तो वहाँ पर जल की संभावना को ही सबसे पहले तलाशा जाता है। जल के समान ही दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व वायु है। इसलिए जलवायु संरक्षण पर आज प्रमुख रूप से ध्यान दिया जा रहा है। वायु के बिना तो जीवन ही असंभव है। वायु में प्रदूषण का अर्थ हमारे जीवन में प्रदूषण से है।

जल से धरती समृद्ध होती है, हरी-भरी होती है और यह हरियाली ही वायु को स्वच्छ करती है, अग्नि की तपन को अवशोषित करती है और वातावरण को सुखद बनाती है। इसलिए यदि एक पंचतत्त्व—जल पर ध्यान दिया जाए, तो मात्र यह तत्त्व ही अन्य तत्त्वों को संतुलित करने में सहायक हो जाता है; क्योंकि मूल में जल ही हमारा पर्यावरण है और पर्यावरण ही जल है। जब जल स्वस्थ रहता है तो धरती स्वस्थ रहती है और मानव भी स्वस्थ रहता है। स्वस्थ मानव पर्यावरण के विरुद्ध काम नहीं करता।

यदि सामूहिक रूप से प्रयास किए जाएँ तो हमारे पर्यावरण को, जलवायु को बचाया जा सकता है। लोगों ने इसके लिए प्रयास भी किए हैं और उल्लेखनीय उदाहरण भी दिए हैं। जैसे राजस्थान में गोपालपुरा गाँव के लोगों ने अपने उजड़े वीरान बेपानी गाँव की स्थिति को सुधारा है और समृद्ध किया है। सबसे पहले उस गाँव के लोगों ने गाँव की मिट्टी के कटाव को रोका और पानी को धरती की कोख में पहुँचाया। उजड़ी वीरान धरती में बीज छिटककर तथा वर्षाजल को रोककर नमी पैदा करके साझी जमीन पर जंगल बनाया और वे अपनी निजी जमीन पर खेती करने लगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि चारों तरफ गाँव में हरियाली बढ़ गई। इस गाँव की स्थिति देखकर यह कार्य आस-पास के गाँवों में फैल गया। अब स्थिति यह है कि इन इलाकों की सूखी, मरी नदियों व कुओं में भी इन उपायों से भू-जल रहने लगा है। अब यहाँ के किसान अकाल में भी अच्छी खेती करते हैं। यहाँ के लोगों ने बस, अपनी जल-उपयोग की दक्षता बढ़ाई है और कम पानी खरच करके अधिक पैदावार करने का चलन शुरू किया है।

गाँववालों ने उपाय एक ही अपनाया कि खेती के अनुकूल उन्होंने हरियाली बढ़ाई, इसीलिए वहाँ पर जलवायु-परिवर्तन के दुष्परिणाम सुधर गए तथा वहाँ का पर्यावरण संतुलित हो गया वहाँ का तापमान भी कम हो गया। यदि इसी तरह के सामूहिक प्रयास अन्य जगहों पर भी किए जाएँ तो हमारे देश का पर्यावरण और जलवायु अवश्य सुधर जाएँगे। ❑

औरों के हित जो जीता है



भारत के मध्य क्षेत्र में एक राज्य हुआ करता था। उस राज्य के मध्य से गुजर रही नदी के किनारे बनी अपनी कुटिया में एक संत वर्षों से रह रहे थे। ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर वे नदी में स्नान करते और फिर घंटों बैठकर परमात्मा के ध्यान में डूबे रहते।

ध्यान के पश्चात वे नित्य अग्निहोत्र करते, शास्त्रों का स्वाध्याय करते, फिर वे पास के वन क्षेत्र में जाकर भ्रमण करते और प्रकृति के अद्भुत सौंदर्य में परमात्मा के सौंदर्य की अनुभूति करते। प्रकृति से उन्हें बेहद लगाव था इसलिए वे अधिकांश समय प्रकृति की गोद में ही बैठे रहते।

उनकी प्रसिद्धि समय के साथ-साथ बढ़ती चली गई। अमीर-गरीब, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी उनसे मिलकर बहुत ही प्रसन्नता का अनुभव करते थे। कई गृहस्थ उनसे अपनी पारिवारिक समस्याओं का समाधान पाते और फिर अपने कर्त्तव्यपालन में लग जाते थे। उस राज्य के राजा को भी उन संत से मिलने की इच्छा हुई। राजा के मन में राज-काज के अलावा कई ऐसे सवाल थे, जिनका उत्तर वे उन संत से पाना चाहते थे। आखिर एक दिन राजा उन संत की कुटिया में पधारे।

उस समय वे संत अपनी कुटिया में बैठे शास्त्रों का अध्ययन कर रहे थे। राजा ने उन्हें प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। संत ने उनका कुशलक्षेम पूछा और आने का कारण भी जानना चाहा। राजा ने प्रत्युत्तर में प्रश्न किया—''महाराज! मैं धर्मनिष्ठ जीवन जीता हूँ। शास्त्रोक्त नियमों का पालन करता हूँ। तब भी न जाने क्यों मेरे राज्य में बेईमानी बढ़ती जा रही है। जहाँ-तहाँ छल-कपट और धोखेबाजी के दर्शन होते हैं। महाराज! क्या राज्य में ऐसा भी कोई आदमी है, जो सदाचारी है और गुणों में देवता से भी महान है?''

संत ने उत्तर में कहा—''है क्यों नहीं? एक तो आप स्वयं हैं; क्योंकि आप समस्या के समाधान की जिज्ञासा रखते हैं और सत्य को जानने की जिज्ञासा वाले व्यक्ति को मैं महान समझता हूँ।''

राजा बोले—''आपकी दृष्टि में मैं भले ही महान होऊँ, मगर मैं ऐसे अन्य महान आदमी को देखना चाहता हूँ, जो मुझसे भी महान हो।'' संत ने कहा—''तब तो वह व्यक्ति मैं हूँ।'' राजा ने फिर कहा—''मैं आपसे भी महान आदमी को देखना चाहता हूँ। कृपया मुझे उसके पास ले चलिए।''

संत ने एक क्षण राजा की ओर देखकर कहा—''राजन् हमें उठकर कहीं जाने की जरूरत नहीं। हमसे महान सैकड़ों आदमी हमें अपने आस-पास ही देखने को मिल जाएँगे, केवल हमें उनकी ओर उस दृष्टि से देखना होगा। आप तो अभी जरा उस सौ साल की वृद्धा की ओर ही देख लीजिए, वह क्या कर रही है?'' राजा ने कहा—''वह तो कुछ देर पूर्व पौधे लगा रही थी, पौधों में पानी दे रही थी और अब वही एक कुदाल से कुआँ खोद रही है।'' ''मगर उसे इस उम्र में पेड़ लगाने, उन्हें सींचने और फिर कुआँ खोदने की क्या जरूरत है। जब तक वह पौधा वृक्ष बनेगा, फल देगा, तब तक वह स्वयं ही जीवित नहीं रहेगी। न तो वह उन वृक्षों के फल ही खा पाएगी, न ही उस कुएँ का पानी पी पाएगी।''—राजा ने यह संत से पूछा।

संतप्रवर बोले—''राजन् आपने ठीक कहा, शरीर छोड़ने की इस उम्र में उसे यह सब करने की क्या जरूरत है? पर राजन्! जरूरत ही सब कुछ नहीं हुआ करती। जो दूसरों के लिए निर्लिप्त होकर अपना जीवन बलिदान करते हैं, वे ही वास्तव में महान हैं और ईश्वरस्वरूप हैं। औरों के लिए जीने और मरने वाले लोग जीवन और मरण की समस्त सीमाएँ लाँघकर अमर हो जाते हैं।'' युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने भी कितना सुंदर कहा है—औरों के हित जो जीता है, औरों के हित जो मरता है—उसका हर आँसू रामायण, प्रत्येक कर्म ही गीता है। इस प्रकरण से राजा को सचमुच एक नई जीवन-दृष्टि मिली। वे संतप्रवर का धन्यवाद करते हुए वहाँ से चल पड़े और उसी दिन से अपनी प्रजा के सुख, समृद्धि के लिए जी-जान से जुट गए। ❑

परीक्षा की तैयारी कैसे करें



परीक्षाएँ हर किसी के लिए तनाव लेकर आती हैं; क्योंकि परीक्षाएँ एक तरह की विशेष चुनौतियाँ हैं, जिन्हें हम स्वयं आमंत्रित करते हैं और उन्हें सफलतापूर्वक पार करना चाहते हैं। यह जानते हुए भी कि परीक्षाएँ कठिन होती हैं, हम उनके लिए फॉर्म भरते हैं, उनकी फीस भरते हैं और बहुत दिन पहले से ही हम परीक्षा की तैयारियाँ करते हैं। आखिर क्यों? क्योंकि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के उपरांत हम अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं, प्रामाणिकता के साथ हम यह कह सकते हैं कि हमने अमुक परीक्षा उत्तीर्ण की है। परीक्षाओं को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करना हमें जीवन में प्रामाणिक बनाता है, लेकिन परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना हर किसी के लिए सरल व सहज नहीं होता, अपितु कठिन व चुनौतियों से भरा होता है।

परीक्षाएँ कई तरह की होती हैं, लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा, प्रायोगिक परीक्षा, ऑनलाइन परीक्षा, व्यावहारिक परीक्षा, ज्ञात एवं अज्ञात परीक्षा आदि। सभी परीक्षाओं में शामिल होने के लिए व्यक्ति का जाग्रत रहना, होश में रहना, वर्तमान में रहना जरूरी है। कहते हैं कि युद्ध में खड़े हुए सिपाही, समाधि में बैठे हुए व्यक्ति और परीक्षा में शामिल हुए विद्यार्थी इनकी चेतना शिखर पर होती है। यदि परीक्षा में शामिल होने वाले व्यक्तियों की चेतना जाग्रत नहीं है, तो वे उसे उत्तीर्ण करने में असफल होते हैं। हालाँकि हर परीक्षा कठिन नहीं होती, कुछ परीक्षाएँ सरल भी होती हैं और कुछ परीक्षाओं का स्तर क्रमिक रूप से लगातार कठिन होता जाता है।

हर विद्यार्थी को अपने जीवन में हर साल एक के बाद एक कक्षाएँ पढ़ते हुए इन्हें उत्तीर्ण करने के लिए परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं और यह उसके लिए थोड़ा कठिन होता है; क्योंकि इन कक्षाओं की पाठ्यसामग्री इस तरह से चयनित की जाती है, जो विद्यार्थियों की अवस्था व आयु के हिसाब से उनके लिए चुनौती प्रस्तुत कर सके और उनके ज्ञान व जानकारियों को भी बढ़ा सके। इसलिए विद्यार्थियों के समक्ष पहले छोटे-छोटे टेस्ट और फिर तीन माह, छह माह में परीक्षाएँ होती हैं, ताकि वे मुख्य परीक्षा के लिए मानसिक रूप से पूर्णतः तैयार हो सकें और आसानी के साथ इसे भी उत्तीर्ण कर सकें, लेकिन मुख्य परीक्षा ही उनकी वास्तविक योग्यता के स्तर को दरसाती है। इसलिए यह परीक्षा उनके लिए बहुत विशेष हो जाती है।

परीक्षा को लेकर विद्यार्थियों में तनाव व घबराहट का होना स्वाभाविक है। हर व्यक्ति के अंदर तनाव झेलने की क्षमता अलग-अलग होती है और हर व्यक्ति इसके लिए अलग तरह की प्रतिक्रिया करता है। कई बार किशोरों के लिए परीक्षा के इस तनाव को झेलना बहुत मुश्किल हो जाता है।

परीक्षा में तनाव होने के कई कारण हो सकते हैं, जैसे—परीक्षा के लिए पूरा पाठ्यक्रम पढ़ना और उसे याद करना, परीक्षा में आने वाले सवालों को लेकर हमेशा अनिश्चितता बनी रहना, याद किए हुए सवालों को भूल जाने की फिक्र होना, बिना पढ़े हुए प्रश्नों का आ जाना, पूछे गए प्रश्नों के आधार पर उत्तरों को सिलसिलेबार न लिख पाना आदि। इसके अलावा परीक्षार्थियों के प्रति परिवार व दोस्तों में बहुत सारी उम्मीदें होती हैं, अपेक्षाएँ होती हैं। आगे किसी अच्छे पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने के लिए भी विद्यार्थियों का परीक्षा में अच्छे अंक लाना जरूरी होता है, इस तरह उनके मन-मस्तिष्क में परीक्षा को लेकर तनाव व दबाव होता है।

जो बुद्धिमान विद्यार्थी होते हैं, वे योजनाबद्ध ढंग से अपनी पढ़ाई करते हैं और बहुत ही आसानी से बिना किसी तनाव के परीक्षाओं को अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण कर लेते हैं। तनाव व परेशानी प्रायः उन विद्यार्थियों को ज्यादा होती है, जो परीक्षा की पहले से तैयारी नहीं करते हैं और इसे उत्तीर्ण करने के लिए शॉर्टकट रास्ते ढूँढ़ते हैं, जैसे—पूरा पाठ्यक्रम तैयार न करके केवल चुनिंदा प्रश्नों को ही पढ़ना, अन्य प्रश्नों को छोड़ देना, परीक्षा में आने वाले प्रश्नों का पता लगाने का प्रयत्न और मात्र उन्हें ही पढ़ना, नकल करने के भाँति-भाँति के उपाय खोजना आदि।

परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने का दबाव हर विद्यार्थी के ऊपर होता है, लेकिन परीक्षाओं में अच्छे अंक लाने, टॉप करने यानी सबसे प्रथम स्थान पाने का दबाव भी कुछ विद्यार्थियों के अंदर होता है और अपनी इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वे अपनी पढ़ाई में बहुत मेहनत करते हैं। जैसे—कई विषयों के अलग-अलग ट्यूशन पढ़ना, घर पर सेल्फ स्टडी करना, अपने पूरे समय को पढ़ाई में नियोजित करना, अपनी कमियों को ढूँढ़ना और उन्हें दूर करना, प्रश्नों को निर्धारित समय में हल करने का पूर्व अभ्यास करना आदि।

इन सब के बावजूद विद्यार्थियों के मन में कई तरह की आशंकाएँ बनी रहती हैं, जैसे—कहीं परीक्षा देने के समय पहले से पढ़ा हुआ सब भूल न जाएँ, कहीं ऐसा न हो कि उन्हें प्रश्न ही समझ में न आएँ और वे उनका उत्तर ठीक ढंग से न दे पाएँ, कहीं ऐसा न हो कि वे प्रश्नों को निर्धारित समय-सीमा में पूरा न कर पाएँ और लिखित परीक्षा में उन प्रश्नों के उत्तर लिखने से चूक जाएँ। इस तरह की नकारात्मक आशंकाएँ भी उन्हें व्यर्थ का तनाव देती हैं।

तनाव का असर केवल परीक्षा देने तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु इसके बाद भी रहता है कि पता नहीं, उन्हें अपनी परीक्षा में कितने अंक मिलेंगे, जितनी उन्हें आशा व अपेक्षा है, उतने अंक मिलेंगे या नहीं। विद्यार्थियों में तनाव का असर सबसे अधिक परीक्षा-परिणाम आने के पूर्व होता है। विद्यार्थी बड़ी उत्सुकता से अपना परीक्षा-परिणाम (रिजल्ट) देखने जाते हैं। इसमें कभी-कभी विद्यार्थियों को अपनी आशा के अनुरूप अंक मिल जाते हैं, कभी अपनी अपेक्षाओं से अधिक अंक मिलते हैं और कभी-कभी उनके अंक उनकी अपेक्षाओं से बहुत कम होते हैं, तब वे निराश हो जाते हैं। इसके अलावा जो विद्यार्थी परीक्षा में फेल हो जाते हैं, वे भी बहुत निराश होते हैं; क्योंकि परीक्षा में फेल होने से उनके जीवन का पूरा एक साल बरबाद हो जाता है, उन्हें फिर से आगे बढ़ने के लिए उस कक्षा को उत्तीर्ण करने के लिए पढ़ाई करनी होती है।

इसमें निराश होने, दु:खी व परेशान होने की जरूरत नहीं, अपितु फिर से अपने मनोबल को बढ़ाने, अपनी गलतियों व कमियों से सीखने और पहले से अच्छी मेहनत करने की जरूरत है। परीक्षा ही होती है, जिससे हमें अपने स्तर का, अपनी योग्यता व काबिलियत का पता चलता है, लेकिन यह भी सत्य है कि हर व्यक्ति के अंदर अलग-अलग तरह की योग्यता होती है और उसे एक ही तरह की परीक्षा के माध्यम से जाँचा नहीं जा सकता और न ही एक ही तरह के पाठ्यक्रम को पढ़कर योग्यताओं को निखारा जा सकता है। इसलिए विद्यार्थियों को अपनी योग्यताओं पर संदेह नहीं करना चाहिए, अपितु अपने अंदर अन्य योग्यताएँ बढ़ाने के लिए प्रयास करना चाहिए।

परीक्षा के अवसर पर परीक्षा की तैयारी के लिए पूरी तरह से सजग रहना चाहिए। अनावश्यक सोचना, अपनी योग्यता पर संदेह करना, आशंका करना, नकारात्मक चिंतन करते हुए बेवजह तनाव लेने आदि के बजाय सकारात्मक सोचना चाहिए और पूरे मन से पढ़ाई करनी चाहिए। परीक्षा की तैयारी के समय होने वाले तनाव को कम करने का एक ही उपाय है कि समय-सीमा का ध्यान रखते हुए अपने पाठ्यक्रम की तैयारी की जाए; क्योंकि जितनी अच्छी तैयारी होगी व उसे दोहराने का क्रम पूरा होगा, उतना ही विद्यार्थियों का तनाव भी कम होगा।

परीक्षा की तैयारी के समय उचित खान-पान का ध्यान रखने की भी जरूरत है, अन्यथा विद्यार्थियों की तबीयत बिगड़ सकती है और इससे उनको बहुत नुकसान हो सकता है। परीक्षा की तैयारी में जितना जरूरी पढ़ाई करना है, उतना ही जरूरी उसे समझना, मन में दोहराना यानी मनन करना, जो याद हो गया है, उसे लिखकर देखना और पढ़ाई के समय बीच-बीच में थोड़ा आराम लेना भी है। जो विद्यार्थी लगातार पढ़ाई करते हैं और आराम नहीं करते, वे प्राय: परीक्षा के समय अपनी पढ़ाई भूल जाते हैं और उसे लिख नहीं पाते, लेकिन जो विद्यार्थी पढ़ाई करने के साथ-साथ विश्राम करने को भी महत्त्व देते हैं, वे अपने पढ़े हुए को गहराई से याद कर पाते हैं और परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन कर पाते हैं।

लिखित व मौखिक परीक्षा में मुख्य रूप से हमारी स्मृति, समझ, लिखावट, तर्कपूर्ण ढंग से बोलने व लिखने का तरीका, व्यवहारकुशलता आदि शामिल हैं व परीक्षा में ये विशेष सहयोगी हैं। इसके अलावा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य भी परीक्षा को सफल बनाने में सोने पर सुहागा जैसा काम करता है। अत: विद्यार्थीगण परीक्षा में पर्व मनाने की तरह मन में उत्साह रखें और पूरे मन से परीक्षा की तैयारी करते हुए परीक्षाएँ दें। ❑

मेरे भारत के दिव्य भाल



'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा आहुः हिमेनाग्नि हिमेवासो, हिम्वानान् हविष्मान गिरिर्यस्ते पर्वता हिमवन्तारण्यते पृथिवी स्योनमस्तु।' ऋग्वेद के महान ऋषियों ने इस तरह हिमालय की महिमा का गान किया है व उसका स्तवन किया है। श्वेत-शुभ्र हिम से ढका हुआ उत्तुंग शिखरों वाला हिमालय सृष्टि का पूर्वज है। मानव सभ्यता का जन्मदाता और उसका संरक्षक है। धरती का प्रत्यक्ष देवता है, पुरातन पुरुष है। आदि से लेकर अब तक इसने धरती को, मानव सभ्यता को अनगिनत अनुदान प्रदान किए हैं व अभी भी दिए जा रहा है। अनगिनत जलस्रोत, औषधियाँ और भी न जाने क्या कुछ।

बड़ी गौरवभरी गाथा है—पर्वतराज हिमालय के अनुदानों की, लेकिन हम सबने उसे क्या दिया, इसकी त्रासदीपूर्ण कथा तो आज अनेक रूपों में कही जा रही है। कई प्रश्न खड़े हो गए हैं आज। क्या हिमालय के प्रति कृतज्ञता निभाने का दायित्व सिर्फ हिमालयवासियों का है अथवा समूचे देश और दुनियावालों को इसके लिए सोचना चाहिए?

हिमालय के खूबसूरत दृश्य दुनिया के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। हिमालयी राज्यों से निकल रही हजारों जलधाराओं, नदियों, ग्लेशियरों के कारण इसे एक विशाल जलाशय के रूप में देखा जाता है। हिमालयी संस्कृति वनों के बीच पली-बढ़ी है। यहाँ का स्थानीय समाज जंगलों की रक्षा एक विशिष्ट वन प्रबंधन के आधार पर करता है। आधुनिक विकास की अवधारणा में इस समाज की कोई हैसियत नहीं बची है। ऐसे में समूचे पर्यावरण को बचाए रखने की महती जिम्मेदारी निभा रहे इस समाज की हम सबको परवाह करनी चाहिए।

भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल में से 16.3 प्रतिशत में फैले 11 हिमालयी राज्यों में अभी तक 45.2 प्रतिशत क्षेत्र में जंगल मौजूद हैं। देश में केवल 22 प्रतिशत भू-भाग में ही जंगल हैं, जो स्वस्थ पर्यावरण मानक 33 प्रतिशत से भी कम हैं। हिमालयी नदियों आदि से देश की लगभग 50 करोड़ की आबादी को पानी मिलता है। मैदानी भू-भाग से भिन्न हिमालयी संस्कृति वनों के बीच पली-बढ़ी है। यहाँ स्थानीय समाज जंगलों की रक्षा एक विशिष्ट वन प्रबंधन के आधार पर करते हैं। अधिकांश गाँवों ने अपने जंगल बचाकर, उन पर अतिक्रमण और अवैध कटान रोकने के लिए चौकीदार रखे हुए हैं। ये वन-चौकीदार अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं, जिनका भरण-पोषण, निर्वाह गाँव के लोग करते हैं। कई गाँवों के जंगलों में तराजू लगे हुए हैं, जिनमें जंगल से आ रही घास, लकड़ी का अधिकतम भार 50-60 किलोग्राम तक लाना ही मान्य है, जिसकी जाँच वन-चौकीदार करते हैं।

हिमालय के लोगों की इस पुश्तैनी वन-व्यवस्था को तब झटका लगा, जब अँगरेज वनों के व्यावसायिक दोहन के लिए सन् 1927 में वन कानून लाए। इसके अनुसार जंगल सरकार के आँकड़ों में आ गए। इसी के परिणामस्वरूप हिमालय-क्षेत्र के राज्यों की ओर देखें तो पर्यावरण की सर्वाधिक सेवा करने वाले वन और स्थानीय समाज की हैसियत अब उनके पास नहीं बची। राज्यों की व्यवस्था है कि वे जब चाहें किसी भी जंगल को विकास की बलिवेदी पर चढ़ा सकते हैं, लेकिन यहाँ सरकारी आँकड़ों के आधार पर हिमाचल प्रदेश में 66.52, उत्तराखंड में 64.55, मणिपुर में 78.01, मेघालय में 42.34, मिजोरम में 79.30, नागालैंड में 55.62, त्रिपुरा में 60.02, आसाम में 34.21 प्रतिशत वन-क्षेत्र मौजूद है। वनों की इस मात्रा के कारण जलवायु पर भारतीय हिमालय का नियंत्रण है।

सन् 2009 में कोपनहेगन में हुए जलवायु सम्मेलन से पहले विभिन्न जनसुनवाई के द्वारा लोगों ने हिमालय के विशिष्ट भू-भाग, प्राकृतिक संसाधन और इससे आजीविका चलाने वाले समुदाय के अधिकारों की सुरक्षा के लिए ग्रीन बोनस की माँग की थी। हिमालयी राज्यों को ग्रीन बोनस दिए जाने को सैद्धांतिक स्वीकृति दी जा सकती है। वैसे चिपको, रक्षासूत्र, मिश्रित वन संरक्षण से जुड़े पर्यावरण कार्यकर्त्ता वर्षों से हिमालय के लोगों को

ऑक्सीजन रॉयल्टी की माँग कर रहे थे। इसमें जगतसिंह जंगली आदि कई लोगों ने अभियान भी चलाए हैं। सरकारी व्यवस्था को भी हिमालय के जंगलों की कीमत पैसे के रूप में दिखाई देने लगी है; जबकि पर्यावरण की सेवा सबसे अधिक जंगल करते हैं। इसके अलावा हिमालय के खूबसूरत दृश्य दुनिया के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

उनकी माँग केवल इतनी थी कि ऑक्सीजन की रॉयल्टी के रूप में रसोई गैस लोगों को निःशुल्क दी जाए। इसी सिलसिले में विकसित देशों के सामने कार्बन-उत्सर्जन की कीमत वसूलने की दृष्टि से भी प्रो. एस. पी. सिंह द्वारा एक आँकड़ा सामने लाया गया है। जिसमें कहा गया है कि भारतीय हिमालयी राज्यों के जंगल प्रतिवर्ष 944.33 बिलियन मूल्य के बराबर पर्यावरण की सेवा करते हैं। अतः कार्बन के प्रभाव को कम करने में वनों का एक बड़ा महत्त्व है। इसमें हिमालयी राज्यों के वन जैसे—जम्मू-काश्मीर में 118.02, हिमाचल में 42.46, उत्तराखंड में 106.89, सिक्किम में 14.2, अरुणाचल में 32.95, मेघालय में 55.15, मणिपुर में 59.67, मिजोरम में 56.61, नागालैंड में 49.39, त्रिपुरा में 20.40 बिलियन मूल्य के बराबर पर्यावरण सेवा देते हैं।

अब हिमालयी राज्यों की सरकारें ग्रीन बोनस की माँग कर रही हैं। अकेला उत्तराखंड केंद्र से 2 हजार करोड़ रुपये की माँग कर रहा है। इसका औचित्य तभी है, जब स्थानीय लोगों को वनभूमि पर मालिकाना हक मिले। महिलाओं को रसोई गैस में 50 प्रतिशत की छूट मिलनी चाहिए। जलसंरक्षण में पाणी राखों के प्रणेता सच्चिदानंद भारती का मॉडल और छोटी पनबिजली के विकास में समाजसेवी बिहारीलाल जी के मॉडल का क्रियान्वयन हो, तटों पर भू-क्षरण रोका जाए।

वनों में आग पर नियंत्रण और वृक्षारोपण के बाद लंबे समय तक पेड़ों की रक्षा करने वाले लोगों को आर्थिक मदद मिलनी चाहिए। गाँव में जहाँ लोगों ने जंगल पाले हैं, उन्हें सहायता दी जाए। पहाड़ी शैली की सीढ़ीनुमा खेतों का सुधार किया जाना आवश्यक है। महिलाओं को घास, लकड़ी, पानी सिर और पीठ पर ढुलान करने के बोझ से निवृत्ति मिलनी चाहिए। हिमालय की पहरेदारी करने वाले पेड़ों और लोगों की जीविका बेहतर हो सकती है—अगर उचित समय पर इनका समाधान न किया गया तो हिमालय की पर्यावरण सेवाओं के घटक जल, जंगल, पहाड़ और मुश्किलों में पड़ सकते हैं।

अपनी जिस सभ्यता पर हमें इतना गर्व है, वह हिमालय की और उससे निकली नदियों की ही देन है। इस सभ्यता को सहेजने के लिए जरूरी है कि उस पर्यावरण को सहेजा जाए; जो इन नदियों को बनाता, बहाता और हमारे खेतों में हरियाली लाता है। पर्यावरण का यह चक्र टूटा तो सूखे व बाढ़ के बीच अपनी सभ्यता को पहले की तरह बरकरार रखना हमारे लिए आसान नहीं होगा।

हम सभी को वैदिक ऋषियों की तरह अपने कर्म व जीवन में इन भावों को स्थान देना होगा—'**गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवीस्योनमस्तु।**' अर्थात—तुम्हारे सभी पर्वत, हिमयुक्त हिमालय का महापर्वत और जंगल हमारे लिए सुखकारी हों। साथ ही महाकवि रामधारी सिंह दिनकर के इन भावों की श्रद्धा-अनुभूति जगानी होगी हम सबको—

मेरे नगपति मेरे विशाल।
साकार, दिव्य, गौरव विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल।
मेरी जननी के हिमकिरीट,
मेरे भारत के दिव्य भाल॥

❑

मेरी एक ही इच्छा और कामना रही है कि वसंत पर्व के दिन आपको बुलाऊँ और मेरे अंदर कितना दरद है, कितनी करुणा है, जीवन को पवित्र बनाने की कितनी संवेदना है, कितना देवत्व है ? यही खोलकर आपको दिखाऊँ। अगर आपको ये पसंद हों तो मैं चाहता हूँ कि आप इनको परखें और हिम्मत हो तो इनको खरीद ही ले जाएँ।

—परमपूज्य गुरुदेव

प्रभावी नेतृत्व का आधार स्व-नेतृत्व



लीडरशिप या नेतृत्व एक ऐसा गुण है, जिसकी जीवन के किसी-न-किसी मोड़ पर सबको आवश्यकता पड़ती है। जीवन में चाहे-अनचाहे ऐसे पल आ जाते हैं, जब आपको अपने क्षेत्र विशेष में समूह को किसी लक्षित मंजिल की ओर लीड करने का मौका मिलता है। नेतृत्व के लिए आवश्यक कई गुणों में सबसे महत्त्वपूर्ण है—स्व-नेतृत्व या सेल्फ लीडरशिप, जो प्रभावी नेतृत्व का आधार है। स्व-नेतृत्व स्वयं पर न्यूनतम पकड़ व विश्वास को सुनिश्चित करता है, नेतृत्व के प्रति सकारात्मक भाव जगाता है तथा टीम को अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है।

स्व-नेतृत्व को विकसित करने के कुछ सूत्र निम्नांकित हैं—

(1) स्व-जागरूकता—अपनी शक्ति व दुर्बलताओं की समझ स्व-नेतृत्व का पहला चरण है। इसी आधार पर अपनी यथास्थिति का बोध होता है व आत्मसुधार एवं निर्माण का कार्यक्रम तय होता है। स्व-जागरूकता से ही हमारा अपनी क्षमता एवं मौलिक प्रतिभा से परिचय होता है व हमें स्पष्ट होता है कि किन दुर्बलताओं को अपनी शक्ति में बदलना है व किन शक्तियों को और धार देनी है।

(2) स्व-लक्ष्य निर्धारण—अपनी क्षमताओं के बोध के आधार पर निर्धारित लक्ष्य व्यक्ति को सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ाता है, विशिष्ट उपलब्धियों के साथ जीवन में सार्थकता का बोध देता है तथा आत्मविश्वास को बढ़ाता है। जीवनलक्ष्य की स्पष्टता होने के साथ व्यक्तित्व का समग्र विकास सुनिश्चित होता है, जो आगे चलकर सशक्त नेतृत्व का सशक्त व सबल आधार बनता है।

(3) सकारात्मक स्व-प्रेरणा—मन के नकारात्मक भाव जीवन में वैसे ही विचारों की बाढ़ ला देते हैं व स्व-नेतृत्व की कसौटी को पग-पग पर चुनौती देते रहते हैं। इनके स्थान पर अनवरत रूप से सकारात्मक विचारों का चिंतन, मनन एवं प्रतिस्थापन सकारात्मक मनोभूमि का निर्माण करता है। इस दिशा में छोटी-छोटी सफलताएँ स्व-नेतृत्व के भाव को पुष्ट एवं सशक्त करती हैं। व्यक्ति सकारात्मक ऊर्जा का पुंज बनता चला जाता है।

(4) सत्य-संवेदना एवं ईश्वरीय आस्था—सत्य-संवेदना को धारण करना स्व-नेतृत्व का केंद्रीय तत्त्व है, जिसके मूल में गहन आत्मश्रद्धा एवं ईश्वरीय विश्वास निहित होता है। यही संवेदना सचाई एवं अच्छाई की शक्ति में अडिग विश्वास जगाती है तथा तमाम विषमताओं एवं प्रतिकूलताओं के बावजूद जीवन में सकारात्मक आस्था का दीप जलाए रखती है व आत्मकल्याण एवं लोकहित के पथ पर अग्रसर रखती है।

(5) जिज्ञासा एवं उदार सोच—जीवन के प्रति जिज्ञासा का भाव व्यक्ति को हर पल एवं हर परिस्थिति से सीखने को प्रेरित करता है तथा उसका व्यक्तित्व नित नए ज्ञान के साथ आलोकित होता है। साथ ही खुलेपन एवं उदारता का भाव व्यक्तित्व को व्यापकता देता है एवं उसे सर्वस्वीकार्य बनाता है। ऐसे में जीवन की चुनौतियाँ आत्मविकास का अवसर बनती हैं व व्यक्ति तमाम प्रतिकूलताओं के बीच निर्धारित गति से अभीष्ट लक्ष्य की ओर गतिशील रहता है।

(6) ईमानदारी एवं जिम्मेदारी—ये व्यक्ति को स्व-अनुशासित करते हैं, उसके आत्मविश्वास को जगाते हैं तथा उसके व्यक्तित्व में विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता को विकसित करते हैं। कहावत भी प्रसिद्ध है कि ईमानदार व्यक्ति एक ऐसा हीरा है, जो हजार मनकों के बीच अलग चमकता है। ईमानदारी जहाँ आंतरिक शांति एवं आत्मबल का आधार बनती है, तो वहीं जिम्मेदारी कर्त्तव्यपालन का संतोष देती है और बृहत्तर जिम्मेदारियों की पात्रता को विकसित करती है।

(7) साहस एवं विनम्रता—बार-बार की असफलताओं, तमाम प्रतिकूलताओं एवं दबावों के बीच जीवनलक्ष्य की ओर बढ़ते रहना अपार साहस एवं धैर्य की माँग करता है। ये गुण व्यक्ति के स्व-नेतृत्व को सबल आधार देते हैं तथा साथ ही जमीनी हकीकत की समझ व्यक्ति को विनम्र बनाती है व प्रभावी नेतृत्व के लिए तैयार

करती है। जबकि अधीर मन छोटे-छोटे अवरोधों से ही विचलित हो जाता है तथा व्यक्ति विषम चुनौतियों के सामने नहीं टिक पाता।

(8) विषय की समझ एवं पकड़—यह स्व-नेतृत्व का एक ठोस आधार है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने विषय का ज्ञान व्यक्ति में आत्मविश्वास को विकसित करता है तथा उसकी प्रतिभा को धार देता है। साथ ही आज के तकनीकी युग में तकनीकी कौशल व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है, उसकी कार्यकुशलता को सुनिश्चित करता है तथा आधुनिक पेशेवर युग में जमाने के साथ कदमताल करने की क्षमता देता है।

(9) वर्तमान का श्रेष्ठतम उपयोग—यह समझ कि आज हम जो कुछ भी हैं, वह हमारे पिछले विचार एवं कर्मों की शृंखला का परिणाम है—यह विश्वास जाग्रत करता है एवं सूझ देता है कि हम जो भी कुछ भविष्य में बनना चाहते हैं या करना चाहते हैं, उसे अपने विचारों एवं कृत्यों के आधार पर संभव कर सकते हैं, अर्थात अपने भाग्य विधान की चाबी हमारे ही हाथों में है। हमारे वर्तमान का हर विचार, कृत्य एवं संकल्प वह आधार है, जो भविष्य के नए अवसरों एवं सफलताओं का सृजन कर रहा है। इस तरह वर्तमान का श्रेष्ठतम उपयोग स्व-नेतृत्व का एक महत्त्वपूर्ण कारक है, जो समय आने पर प्रभावी नेतृत्व को संभव बनाता है। ❑

एक व्यापारी के यहाँ नौका चालन द्वारा व्यापार होता था। एक बार उसके दोनों लड़के नावों में माल भरकर विदेश बेचने गए। लौटते हुए परदेश से दूसरा माल लाने की योजना थी। रास्ते में समुद्री तूफान आया। नावें उलट गईं। उनमें रखे दो तख्तों के सहारे वे किनारे आ गए। जान भर बच गई। उस क्षेत्र में तीन यक्षिणियों का शासन था। एक का नाम था वासना, दूसरी का तृष्णा और तीसरी का अपूर्णा। वे सुंदर युवकों की तलाश में रहतीं। कुछ दिन के भोग-विलास से उन्हें खोखला कर देतीं और इसके बाद दूर के सिंह-बाघों से भरे जंगल में उन्हें बेमौत मरने के लिए छोड़ देतीं। यक्षिणियों ने उन युवकों का भी इसी दृष्टि से उपयोग किया। उन्हें हिदायत दी कि घूमना हो तो महल के इर्द-गिर्द ही घूमें। दक्षिण दिशा में भूलकर भी न आवें।

दोनों भाई उनके पंजे से छूटकर घर जाने की फिक्र में थे, सो दाँव लगते ही दक्षिण दिशा की ओर तेजी से चल पड़े। दूर जाने पर एक जर्जर अस्थि-कंकाल के रूप में युवक रोता मिला। उसने बताया—"यक्षिणियों ने खोखला करके यहाँ मरने के लिए छोड़ दिया है। रहस्य की बात यह है कि वे पीछा करें, मधुर बातें करें तो भी उनकी ओर मुड़कर न देखना, अन्यथा वे भारी प्रतिशोध लेंगी।" ऐसा ही हुआ। यक्षिणियाँ पीछे दौड़ती हुई आईं। एक भाई उनसे वार्त्ता करने लगा, उसे ले जाकर कुछ ही दूर पर मार डाला। जिसने मुड़कर नहीं देखा, वह उनके जादू से बच गया और किसी प्रकार घर आ गया। वस्तुतः लिप्साएँ ही यक्षिणियाँ हैं। जो उनके कुचक्र में फँसता है, वह जान गँवाता है।

संत शिरोमणि रविदास



कह रैदास तेरी भगति दूरी है,
भाग बड़े से पावे।
तजि अभिमान मेटि आपा पर,
पिपिलक ह्वै चुनिखावे॥

इन विचारों का आशय यह है कि ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। अभिमान तथा बड़प्पन का भाव त्यागकर विनम्रतापूर्वक आचरण करने वाला मनुष्य ही ईश्वर का भक्त हो सकता है। विशालकाय हाथी शक्कर के कणों को चुनने में असमर्थ रहता है; जबकि छोटे शरीर की पिपीलिका (चींटी) इन कणों को सरलतापूर्वक चुन लेती है। ये विचार संत रविदास के हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक बुराइयों को समाप्त किया तथा व्यक्ति को धार्मिक कर्मकांड करने के बजाय कर्मयोगी बनने के लिए प्रेरित किया।

रविदास लोकवाणी में लिखते थे, इसलिए जनमानस पर उनके लेखन का सहज प्रभाव पड़ता था। उनकी रचनाओं में सदैव मानवीय एकता व समानता पर बल दिया जाता था। वे मानते थे कि जब तक हमारा अंतर्मन पवित्र नहीं होगा, तब तक हमें ईश्वर का सान्निध्य नहीं मिल सकता है। दूसरी ओर, यदि हमारा ध्यान कहीं और लगा रहेगा तो हमारा मुख्य कर्म भी बाधित होगा तथा हमें कभी भी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जो बातें उन्होंने स्वयं के अनुभव से जानीं, उन्हें ही अपनी रचनाओं के माध्यम से आमजन को बताया। उनके जीवन की एक प्रमुख घटना से पता चलता है कि वे गंगास्नान के बजाय खुद के परिष्कार को संपन्न करने को प्राथमिकता देते हैं।

संत रविदास ने कहा कि लगातार कर्मपथ पर बढ़ते रहने पर ही सामान्य मनुष्य को मोक्ष की राह दिखाई दे सकती है। अपने पदों व साखियों में वे किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए श्रम को ही मुख्य आधार बताते थे। इसलिए वे मध्यकाल में भी अपनी बातों से आधुनिक कवि के समान प्रतीत होते हैं। वे लिखते हैं—

जिह्वा सों ओंकार जप,
हत्थन सों करि कार।
राम मिलहिं घर आइ कर,
कहि रविदास विचार॥

एक पद में नाम की महत्ता को बताते हुए राम-नाम के जप पर जोर देते हैं, जिससे सगुण ब्रह्म की शक्तिशाली सत्ता का मोह टूट जाता है और शासन की जगह समानता का स्वर बुलंद होता है। अपने समय के नानक, कबीर, सधना व सेन जैसे कवियों की तरह रविदास भी इस बात को समझते थे कि सगुण अवतार जहाँ शासन-व्यवस्था को जन्म देता है, वहीं निर्गुण राम समानता के मूल्य के साथ खड़े होते हैं, जो अपनी चेतना में एक आधुनिक मानस को निर्मित करते हैं—

नामु तेरो आरती भजनु मुरारे,
हरि के नाम बिनु झूठै सगल पसारे।

ऐसे पदों के आधार पर रविदास अपने समय की शक्तिशाली प्रभुता को उसके अहंकार का बोध कराते हैं। वे समान दृष्टि रखने वालों का आह्वान करते हैं, जो उन्हें आज भी प्रासंगिक बनाता है।

बनारस के दक्षिणी छोर पर स्थित सीर गोवर्धन में छह शताब्दी पहले पैदा हुए थे संत रविदास। उनका जन्म सन् 1388 का माना जाता है। रैदास कबीर के समकालीन थे। कबीर ने 'संतन में रविदास' कहकर इन्हें मान्यता दी है। महान भक्त मीरा ने उन्हें गुरु के रूप में वरण किया था। इनकी ख्याति से प्रभावित होकर तात्कालिक बादशाह सिकंदर लोदी ने उन्हें दिल्ली आने का आमंत्रण भेजा था। वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते और उन्हें भावविभोर होकर सुनाते। वे मानते थे कि ईश्वर एक है। उसे मानने वाले लोगों ने उसे अलग-अलग नाम दे दिया है। इनके 40 पद 'गुरुग्रंथ साहब' में न केवल शामिल किए गए, बल्कि लोकजीवन में अत्यंत प्रसिद्ध भी हुए।

मान्यता है कि रविदास जी के साथ भेदभाव भी खूब हुआ था, जिसका दरद उनकी रचनाओं और उनके इर्द-

गिर्द बुनी गई कथाओं में भी देखा जा सकता है। उनकी विद्वत्ता को बड़े-बड़े विद्वान भी स्वीकार कर उन्हें दंडवत प्रणाम करते हैं।

रैदास ने अपनी काव्य रचनाओं में सरल, व्यावहारिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू-फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है। उनको उपमा और रूपक अलंकार विशेष प्रिय थे। सीधे सादे पदों में संत कवि ने हृदय के भाव बड़ी सफाई से प्रकट किए हैं। इनका आत्मनिवेदन, दिव्य भाव और सहज भक्ति पाठकों के हृदय को उद्वेलित करते हैं। यह उनके पदों व साखियों में देखा जा सकता है—

अब विप्र परधान करहि दंडवति,
तरे नाम सरनाई दासा

जैसे पद इसका साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि असमानता और अहंकार से युक्त समाज में रहकर रविदास जी अपने समय में एक ऐसे बेगमपुर (बेगमपुरा सहर को नाऊँ, दुःख अन्दोख नहीं तिहि ठाऊँ) की परिकल्पना करते हैं, जहाँ किसी को कोई दुःख न हो और सभी इनसान समान हों। केवल समान ही नहीं, बल्कि सभी को समान अवसर भी मिले।

वे मानते थे कि यदि हमारा हृदय निर्मल हो तथा परोपकार, दया, क्षमा आदि भावों से हमारे विचार प्रभावित हों, तभी ईश्वर की आराधना सफल हो सकती है। रविदास जी ने समानता और समरसता के आधार पर जो रचनाएँ दीं, वे ही एक नई सामाजिकता का गठन करती हैं। इनमें जड़ता, अंधविश्वास, अंधभक्ति के कई मूल्य ध्वस्त हुए और फिर इन सभी विकारों से रहित एक स्वस्थ समाज सामने आया। जात-पाँत व भेदभाव रहित समाज ही स्व-विवेक के बल पर सही निर्णय ले सकता है।

रविदास भक्ति आंदोलन के एक ऐसे संत थे, जो जीवन भर श्रम की महत्ता पर जोर देते रहे। इनकी सर्वाधिक ऊर्जा अपने समय के पाखंड से लड़ने में खरच हुई, क्योंकि उन्हें पता था कि इसके बगैर समता, समानता व सहअस्तित्व की भावना को अर्जित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार, व्यक्ति को धार्मिक पाखंड करने के बजाय अंतर्मन की पवित्रता पर जोर देना चाहिए। माघ पूर्णिमा के अवसर पर हर वर्ष बनारस के सीर गोवर्धन में संत रविदास की स्मृति में बड़ा आयोजन होता है, जिसमें पूरे भारत से बड़ी संख्या में लोग शामिल होते हैं। संत रविदास के विचारों की छाप भारतीय मनोमस्तिष्क पर अमिट बनी रहेगी। ❑

न्यूजीलैंड की राजकुमारी डायना वालेसी उच्च शिक्षित और सुसंपन्न थीं। उन्हें पर्यटन का शौक था। हर साल संसार के मनोरम स्थानों को देखने के लिए वे प्रचुर धन व्यय करती थीं। बड़े होटलों में ठहरती थीं। तब उनकी आँखों में सुसंपन्न संसार का ही नक्शा था। एक प्रवास के दौरान वे भारत भी आईं। यहाँ के शहरों की स्थिति और देहातों की दशा में जमीन-आसमान जैसा अंतर देखा। लौटीं तो उनका विचार बदल गया और उन्होंने भारत जैसे पिछड़े देश की सेवा करने की ठान ठानी।

वे न्यूजीलैंड छोड़कर भारत आ गईं और मुंबई के निकट एक देहात में बस गईं। उनसे सारे देश की सेवा करते तो न बन पड़ी, पर एक आदर्श उपस्थित किया कि संपन्न लोग यदि निर्धनों को अपने परिवार में सम्मिलित कर लें तो समस्या सहज ही हल हो सकती है। डायना ने विवाह नहीं किया, पर निर्धनों के बच्चे गोद लेकर उन्हें सुयोग्य बनाना आरंभ कर दिया। मुंबई में श्रम करके आजीविका कमा लेती थीं और गोद लिए बच्चों के भरण-पोषण में तल्लीन होकर प्रसन्न रहती थीं। वे आजीवन यहीं रहीं और उन्होंने समाज की सेवा करके एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

अंदर की उमंगें बनाती हैं युवा



हमारी उम्र कभी पीछे नहीं जा सकती, बल्कि हम चाहें-न-चाहें, समय के साथ यह आगे ही जाएगी। अगर कोई व्यक्ति सत्तर वर्ष का है, तो वह साठ का नहीं हो सकता; क्योंकि समय के कालचक्र में वह साठ वर्ष की उम्र से गुजर चुका है। जब भी कोई व्यक्ति साठ वर्ष की उम्र पार करता है, तो अक्सर उसके रिटायर होने की बात होती है। हमारे समाज में एक आम धारणा है कि बूढ़े लोग इस उम्र में आकर असामान्य हरकतें करते हैं, लेकिन यह एक रूढ़ धारणा से अधिक और कुछ भी नहीं है।

हमारा शरीर समय के साथ जवान हो, यह संभव हो या न हो, लेकिन हमारा मन समय के साथ जवान हो सकता है और इसके लिए हमें अपने मन की दिशा को सकारात्मकता की ओर मोड़ना होगा; क्योंकि शरीर और मन एकदूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं, मन की गतिविधियों का पूरा प्रभाव शरीर पर पड़ता है और शरीर की क्रियाविधियों का प्रभाव मन पर पड़ता है। यदि शरीर की उम्र को देखकर मन यह मान ले कि वह बूढ़ा हो रहा है, तो निश्चित रूप से मन भी बूढ़ा होने लगेगा, क्योंकि उसने ऐसा मान लिया है। यदि मन यह माने कि उसका शरीर समय के साथ भले ही बूढ़ा हो रहा है, पर मन अभी पहले जैसा ही जवान है, मन में पहले से अधिक अनुभव हैं, मन में पहले से अधिक सक्रियता है, अच्छी-अच्छी योजनाएँ हैं, तो मन की यह ऊर्जा वृद्ध हो रहे शरीर को भी सक्रिय बना देती है।

जब हम किसी औजार को अनुपयोगी व निष्क्रिय मान लेते हैं, उसका उपयोग करना बंद कर देते हैं, तो वह औजार भी अपनी क्षमता खोने लगता है और समय के साथ उसके कलपुरजे जाम हो जाते हैं, काम करना बंद कर देते हैं। इसके विपरीत यदि किसी उपकरण या औजार से हम लगातार काम लेते हैं, तो वह किसी नए औजार से भी अधिक हमारे लिए मूल्यवान व उपयोगी होता है और हमारे कार्यों में हमारा साथ देता है। ठीक यही बात मनुष्य जीवन के साथ भी है। यदि हम अपने शरीर को लगातार सक्रिय रखते हैं, सकारात्मक सोचते हैं, सृजनात्मक कार्य करते हैं, तो हमारी यह सक्रियता हमें अपने समाज के लिए उपयोगी बना देती है। ऐसा व्यक्ति फिर नए लोगों के लिए भी प्रेरणास्रोत बन जाता है और अपने समान अनेक लोगों की मानसिकता को बदलता है और उन्हें भी उपयोगी बना देता है।

वर्तमान में हमारे समाज में 'फिट एंड फाइन दिखना है' यह सोच रखने वालों की तादाद बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसके कारण उम्र को पीछे धकेलकर आगे बढ़ने की ख्वाहिश हर चेहरे पर देखी जा सकती है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि फिटनेस इंडस्ट्री आज लगभग 19 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। अब स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि बॉडी इमेज यानी मेरा शरीर कैसा दिखता है, को लेकर हर उम्र के लोग सचेत नजर आ रहे हैं, क्योंकि शरीर की अवस्था को देख करके ही उम्र का पता लगता है। यदि शरीर की उम्र छिपा दी जाए, तो फिर कोई उसे बूढ़ा नहीं कहेगा।

आजकल सब जगह ऐसे बुजुर्ग देखने को मिल जाते हैं, जो इतने फिट नजर आते हैं कि उन्हें देखकर उनकी वास्तविक उम्र का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। हालाँकि इस फिटनेस क्रांति का दायरा बहुत छोटा है और यह केवल शहरों व महानगरों की आबादी तक ही सीमित है; क्योंकि आज भी हमारे समाज में ऐसे लोगों की संख्या बहुत ज्यादा है, जो बुढ़ापे को अपने जीवन का ठहराव काल मान लेते हैं, जहाँ शरीर को मात्र ढोना होता है, दूसरों पर आश्रित रहना होता है और मन को बस पूजा-पाठ और धार्मिक कार्यों में लगाना होता है। बुढ़ापे का स्वागत करने की बात तो दूर, अक्सर चालीस की उम्र के बाद से ही बुढ़ापे की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं।

कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में मनोचिकित्सा की एक प्रोफेसर 'एलिसा एपेल' जो जीवनशैली व उम्र के बीच तालमेल पर अध्ययन कर रही हैं, उनके अनुसार—यदि आप बेहतर जिंदगी चाहते हैं तो आपको अपनी दिनचर्या में वे सब बदलाव करने होंगे, जो आपको फिट बना सकते हैं;

क्योंकि वक्त के साथ बदलना और परिस्थितियों के संग ढलते जाने का नाम ही जिंदगी है और इसके लिए फिट रहना बहुत जरूरी है। मनोविशेषज्ञों के अनुसार—यदि आप खुद से प्यार करते हैं और 'जियो व जीने दो' वाली बात को अपने जीवन पर लागू करते हैं, तो फिर न ही हमें जिम्मेदारियाँ रुलाती हैं और न ही बढ़ती उम्र, क्योंकि फिर आपका पूरा ध्यान अपनी जीवनशैली पर होता है।

वर्तमान जीवन का सच है कि आज हमारे परिवार सिकुड़ते जा रहे हैं और इन सिकुड़ते परिवारों में सभी सदस्यों की अपनी एक अलग दुनिया है। इसमें भी बुजुर्गों की दुनिया सबसे अलग है। आज बड़ी संख्या में बुजुर्ग घर में या घर के बाहर पार्कों में अकेले बैठे दिखते हैं। अन्य कारणों को यदि दरकिनार किया जाए तो उनके जीवन में यह अकेलापन इसलिए भी देखा गया है; क्योंकि ऐसा माना जाता है कि वे बुजुर्ग हैं, बीमार हैं, इसलिए कोई काम करने में असमर्थ हैं। मनोविशेषज्ञों के अनुसार—यदि मन मान ले कि हम बुजुर्ग हैं, इसलिए असमर्थ हैं, तो निश्चित रूप से ऐसा ही होगा।

काम-काज की उम्र पार करने के बाद अचानक जीवन की रेस से बाहर हो जाने का क्षोभ बुजुर्गों के चेहरों पर आसानी से पढ़ा जा सकता है। इसलिए रिटायर होने के बाद हम क्या करेंगे? इसकी प्लानिंग अब तीस वर्ष की उम्र के बाद ही होने लगती है। यह तथ्य है कि रिटायर होने के बाद भी इनसान की क्षमता में ज्यादा फरक नहीं पड़ता। यही वजह है कि विदेशों में सेवानिवृत्ति के बाद भी उम्रदराज लोगों से उनके अनुभवों के आधार पर सेवा ली जाती है। हालाँकि अब यह प्रचलन भारत में भी कहीं-कहीं पर देखा जा रहा है, लेकिन इसकी रफ्तार बहुत उत्साहजनक नहीं है; क्योंकि आमतौर पर यहाँ रिटायरमेंट को व्यक्ति की क्षमता से जोड़कर देखा जाता रहा है। इस बारे में जापान की कॉस्मेटिक कंपनी पोला का जिक्र किया जा सकता है, जहाँ केवल बुजुर्ग कर्मचारियों को ही काम पर रखा जाता है। यहाँ 80 से 100 साल तक की महिलाएँ काम करती हैं। कंपनी का ऐसा मानना है कि वे अपने अनुभव के आधार पर बेहतर सेवाएँ दे सकती हैं।

चेहरे पर छा जाने वाली खुशी व रौनक ही व्यक्ति को जवान बना देती है और मन पर छाने वाली सकारात्मकता व्यक्ति को उत्साह-उमंग से भर देती है। इसलिए उम्र चाहे कितनी भी हो, चेहरे की मुस्कराहट व मन का उत्साह कम नहीं होना चाहिए। यदि कोई यह सोचे कि बचपन व जवानी का समय हमारा अच्छा था और अब बुढ़ापे का यह दौर अच्छा नहीं है, तो ऐसी सोच निराशा ही पैदा करेगी। जीवन के हर दौर की अपनी खामियाँ व खूबियाँ हैं, इसलिए जीवन का कोई भी दौर अच्छा या बुरा नहीं होता, बल्कि उसे अच्छा या बुरा बनाया जा सकता है और यह हमारे दृष्टिकोण व मानसिकता पर निर्भर है। इसलिए बुढ़ापे का आनंद लेना भी हमें आना चाहिए।

यदि हमारे चेहरे पर रौनकता है, सक्रियता है, मुस्कराहट है तो उम्रदराज चेहरा भी सुंदर व जवान दिखता है, लेकिन यदि चेहरे पर उदासी है, निष्क्रियता है, निराशा व अवसाद है, तो जवान चेहरा भी बुझा हुआ व बदसूरत दिखता है। इसलिए बुढ़ापे की सुंदरता कभी कम नहीं पड़नी चाहिए, बल्कि समय के साथ बढ़नी चाहिए; क्योंकि अंदर की उमंगें ही हमें वास्तव में युवा बनाती हैं। ❑

रेशम का कीड़ा अपने लिए जाला बुनता है और उसी में कैद हो जाता है। मकड़ी अपना जाला बुनती है और उसी में जकड़कर बैठ जाती है। मनुष्य भी अपनी अहंता का विस्तार करता है और उससे अवरुद्ध होकर भव-बंधनों की जकड़न से त्राहि-त्राहि करता है। माया की गाँठ मनुष्य ही बाँधता है और खोल भी लेता है। मानसकार ने काम, क्रोध व लोभ को तीन सबसे बड़े शत्रु बताया है— *'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥'* **—ये ही मनुष्य के पतन के कारण बनते हैं।**

पातंजल योग एवं अंतर्यात्रा का तत्त्वदर्शन



योग भारतीय आध्यात्मिक परंपरा की एक विशिष्ट विधा है, जिसका वर्णन वेदों में मिलता है, उपनिषदों में जिसकी विकासयात्रा आगे बढ़ती है। इसको व्यवस्थित करने का श्रेय महर्षि पतंजलि को जाता है। इसी रूप में पातंजल योगदर्शन विशिष्ट स्थान पाता है। महर्षि पतंजलि योग को चित्तवृत्ति निरोध के रूप में परिभाषित करते हैं, जो स्वयं में योग की एक अनूठी एवं मौलिक व्याख्या है। समाधि में चित्तवृत्तियों के पूर्ण निरोध के बाद की अवस्था को पतंजलि, आत्मतत्त्व के द्रष्टास्वरूप की स्थिति के रूप में दरसाते हैं।

देखने में यह बौद्धिक रूप से कितनी सरल एवं स्वाभाविक प्रक्रिया लग सकती है, लेकिन व्यावहारिक रूप में यह एक क्रमिक एवं लंबी प्रक्रिया है। क्योंकि जब हम चित्तवृत्तियों की बात करते हैं, तो वे कोई सामान्य चीज नहीं हैं। हमारे व्यवहार के माध्यम से वे परिलक्षित होती हैं, हमारी सोच को प्रभावित करती हैं, चरित्र को परिभाषित करती हैं व व्यक्तित्व का निर्धारण करती हैं। मात्र इस जन्म के कर्म नहीं, जन्म-जन्मांतरों के कर्म परिपाक चित्त की अचेतन गहराइयों में दबे-छिपे होते हैं, जिन तक पहुँच, इनको सचेतन करने की प्रक्रिया एक तरह से अपने मूलस्रोत तक की यात्रा जैसी प्रक्रिया है, जो अपने अंतिम चरणों में एक सूक्ष्म एवं गंभीर साधनात्मक पुरुषार्थ है। आश्चर्य नहीं कि कहीं इसे अंतर्यात्रा के रूप में, तो कहीं चेतना की शिखर यात्रा के रूप में प्रतिपादित किया जाता है ।

महर्षि पतंजलि द्वारा चित्त के इस अथाह कर्मभंडार, संस्कारराशि को परिमार्जित, परिष्कृत एवं सचेतन करने की प्रक्रिया को बहुत ही वैज्ञानिक विधि के साथ स्पष्ट किया गया है। जिनकी योगयात्रा पूर्वजन्मों में पूरी हो चुकी है, जो अंतिम पड़ाव की ओर बढ़ रहे हैं, ऐसे पहुँचे हुए साधकों के लिए यहाँ अभ्यास-वैराग्य की बात कही गई है। मध्यम श्रेणी के साधकों के लिए क्रियायोग का प्रतिपादन किया गया है, जिसके अंतर्गत तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान की व्यवस्था है। वहीं सर्वसाधारण योग-अभीप्सुओं के लिए अष्टांग योग का पथ बताया गया है।

अष्टांग योग में सबसे पहले यम-नियम आते हैं। यम में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय एवं अपरिग्रह जैसे सद्गुणों का अभ्यास साधक के व्यावहारिक समायोजन के अभ्यास हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति परिवेश के साथ न्यूनतम तालमेल एवं संतुलन की अवस्था में रहता है। नियम व्यक्तिगत तन-मन के अनुशासन हैं। इसके अंतर्गत शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप एवं ईश्वरप्रणिधान साधक को योग के उच्चस्तरीय प्रयोग के अनुरूप तैयार करते हैं, जिसमें अंतर्मुख होकर ध्यान-साधना के गंभीर प्रयोग संपन्न किए जाते हैं।

आसन-प्राणायाम क्रमशः शरीर व प्राण की सबलता को सुनिश्चित करते हैं। आसन शरीर को ध्यान के लिए आवश्यक स्थिरता एवं दृढ़ता प्रदान करते हैं तो वहीं प्राणायाम जहाँ प्राणों को स्थिर एवं संतुलित करते हैं तथा प्राणों के प्रवाह को बाधित कर रही सूक्ष्मनाड़ियों की विकृतियों का शोधन करते हैं। इस तरह आसन-प्राणायाम तन-मन को योग के उच्चस्तरीय प्रयोगों के लिए तैयार करते हैं, जिसका अगला चरण प्रत्याहार है। जिसका अभिप्राय इंद्रियों के विषयों से मन को रोकना है, मन को अंतर्मुखी दिशा देना है।

इस अंतर्मुखी मन को अपने आध्यात्मिक ध्येय की ओर लगाए रखना धारणा है तथा जब यह धारणा स्थिर हो जाती है, तो ध्यान का रूप लेती है और यह अपनी परिपक्वता के साथ समाधि की अवस्था की ओर ले जाती है। समाधि के विभिन्न चरणों में चित्त का परिष्कार होता है, जिसकी निर्बीज अवस्था में संस्कारों का, कर्मबीज के परिष्कार के साथ जड़मूल से उच्छेदन होता है। जिसकी परिणति आध्यात्मिक क्षेत्र की सर्वोच्च उपलब्धि ऋतंभरा प्रज्ञा के रूप में होती है, जो विवेक-बुद्धि की प्रतिष्ठा या स्थितप्रज्ञ अवस्था की प्राप्ति है। इस सारी प्रक्रिया में ध्यान ही केंद्रीय तत्त्व होता है, जिसके माध्यम से चित्तशुद्धि के प्रयोग संपन्न होते हैं।

पतंजलि योग में ध्यान की प्रक्रिया को समझने के लिए यहाँ पुरुष-प्रकृति के स्वरूप को समझने की

आवश्यकता है, जो सांख्य दर्शन की मूल अवधारणा है। पुरुष चेतन तत्त्व है, जो स्वयं में प्रकाशित, नित्य, गुणातीत एवं साक्षी है। व्यक्ति में इसे आत्मतत्त्व के रूप में समझ सकते हैं। वहीं प्रकृति जड़ है, अनादि है, व इसका स्वरूप त्रिगुणात्मक है, जो सत्, रज एवं तमोगुण से बनी हुई है। सृष्टि के प्रारंभ में यह गुणों की साम्यावस्था में रहती है। पुरुष एवं प्रकृति के संयोग से जो हलचल होती है, सृष्टि का विस्तार होता है, गुणों के विभिन्न संयोजन के अनुरूप विविध प्रकार के जीवोंसहित मनुष्यों की रचना होती है।

सत्, रज एवं तम के विभिन्न अनुपात के अनुरूप व्यक्ति के चित्त की अवस्थाएँ क्रमशः पातंजल योग में इस तरह से निरूपित हैं—मूढ़ावस्था, क्षिप्तावस्था, विक्षिप्तावस्था, एकाग्रावस्था एवं निरुद्धावस्था। जिनमें मूढ़ावस्था तम प्रधान है, क्षिप्तावस्था रजोगुण प्रधान है। विक्षिप्तावस्था में तम व रज का मिश्रण रहता है। एकाग्रावस्था सतोगुण प्रधान है व इसमें रज व तम क्षीण अवस्था में रहते हैं। निरुद्धावस्था गुणातीत अवस्था है, जो समाधि की अवस्था है।

इस तरह अष्टांग योग साधक के तम, रज एवं सत्त्व गुण को परिष्कृत करते हुए उसके मूल आत्मस्वरूप तक ले जाता है या कहें क्रमिक रूप से पुरुष या आत्मतत्त्व अपने मूलस्वरूप में प्रतिष्ठित होता है, जो अविद्या एवं अज्ञानवश स्वयं को दृश्य के साथ जोड़कर स्वयं को सीमित व्यक्तित्व (अहंकार) के रूप में देख रहा था, राग-द्वेष में उलझा हुआ कर्मबंधनों से जकड़ा हुआ था। पातंजल योग क्रमिक रूप में चित्तवृत्तियों का निरोध करते हुए साधक को अपने मूलस्वरूप में प्रतिष्ठित करता है, जिसकी प्रक्रिया पूरी तरह से व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक है। कोई भी अभीप्सु, नैष्ठिक योगसाधक बनकर इस अंतर्यात्रा का सहभागी बन सकता है, चेतना की शिखर यात्रा का आरोहण कर सकता है। ❑

जोन ऑफ आर्क का नाम फ्रांस की जनता के मन से उतरने भी न पाया था कि उसी भूमि पर एक और देवी प्रकट हो गई। वह थी—'साराह'। उन दिनों लोकरंजन का कार्य नाटक ही करते थे। सिनेमा का युग आरंभ नहीं हुआ था। देवी साराह ने नाटक के क्षेत्र में प्रवेश किया। वह ड्रामे लिखती भी थीं और अभिनय भी करती थीं। सभी के विषय आदर्शों से भरे-पूरे होते थे। उन्होंने जन जागरण, प्रगति, आदर्श, देशभक्ति यही सब अपने विषय रखे।

वे सिनेमा की नायिकाओं की तरह सुंदर न थीं। सिनेमा-अभिनेत्रियों की उछल-कूद प्रायः 20 वर्ष काम देती है। इसके बाद वे दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंकी जाती हैं, पर साराह 61 वर्ष तक अपना काम मुश्तैदी से करती रहीं। उन्हें जीवन प्यारा था, पर वे मृत्यु को और भी अधिक प्यार करती थीं। मृत्यु से लेकर दफन होने तक का एक नाटक उन्होंने लिखा भी था। यूरोप भर के मूर्द्धन्य लोग उसे देखने आया करते और अत्यंत प्रभावित होते। साराह थीं तो अभिनेत्री, पर वास्तव में उनकी गणना फ्रांस के नवनिर्माण की दिशा देने वालों में होती है। उन्हें युग की संदेशवाहिका माना गया।

स्वामी विवेकानंद की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ



अध्यात्म के शिखर पुरुष स्वामी विवेकानंद का जीवन चरित्र सचमुच उनकी दिव्य आध्यात्मिक अनुभूतियों का एक ऐसा लहराता, उफनता सागर है, महासागर है, जिसमें उठती हुई लहरें सहसा हमें अपने आगोश में लेकर, हमारे चित्त को नहलाकर हमें असीम आत्मिक, आध्यात्मिक आनंद में डुबो देती हैं। अपने पूर्वजन्म के प्रबल, प्रचंड आध्यात्मिक संस्कार के कारण विवेकानंद को अपने बाल्यकाल से ही ईश्वर के प्रति विशेष अनुराग था, प्रेम था। उन्हें बचपन से ही दिव्य अनुभूतियाँ हुआ करती थीं। प्रतिदिन शयन के पूर्व उन्हें एक दिव्यदर्शन हुआ करता था। आँखें मूँदते ही उन्हें अपनी भौंहों के बीच निरंतर परिवर्तनशील रंगों का एक ज्योतिबिंदु दीख पड़ता था। वह ज्योतिबिंदु क्रमशः बढ़ते हुए एक गोले के आकार का होकर फट जाता था और उससे निस्सृत होने वाले एक शुभ्र ज्योतिपुंज से उनका संपूर्ण शरीर नहा उठता था। उस आलोक का अवलोकन करते हुए वे धीरे-धीरे निद्रा में डूब जाते।

बचपन में नरेंद्र शिव जी की मूर्ति के समक्ष बैठकर ध्यान किया करते थे। ध्यान के समय प्रायः ही उनकी बाह्य संज्ञा का लोप हो जाया करता था। एक बार उन्हें हाथ में दंड एवं कमंडलु लिए हुए एक ज्योतिर्मय पुरुष का दर्शन हुआ, जिनके मुखमंडल से दिव्य प्रशांति निस्सृत हो रही थी। वे दिव्यपुरुष मानो उनसे कुछ कहना ही चाहते थे कि नरेंद्र भयपूर्वक कमरे से बाहर निकल आए। बाद में आगे चलकर उन्होंने समझा कि उस बार संभवतः उन्हें बुद्धदेव का दर्शन हुआ।

पंद्रह वर्ष की आयु में उन्हें पुनः एक दिव्य आध्यात्मिक अनुभूति हुई। तब वे अपने परिवार के साथ मध्यप्रदेश के रायपुर नगर को जा रहे थे। यात्रा का कुछ भाग बैलगाड़ी में तय किया जा रहा था। उस दिन शीतल और मंद वायु प्रवाहित हो रही थी। वृक्ष और लताएँ रंग-बिरंगे पत्र-पुष्पों से झुके जा रहे थे, तरह-तरह के पक्षी कलरव कर रहे थे। चलते-चलते बैलगाड़ी एक ऐसी सँकरी घाटी के समीप पहुँची, जहाँ दो ऊँचे पर्वत शिखर मानो एकदूसरे को चूम रहे थे। मुग्ध होकर निहारते हुए नरेंद्र ने देखा कि पर्वत की एक दरार से धरती पर एक विशाल मधुचक्र लटक रहा है। यह अद्भुत-अपूर्व दृश्य देखकर उनका मन ईश्वर की अनंत शक्ति की कल्पना करते हुए श्रद्धा एवं विस्मय से विभोर हो उठा और वे बाह्य संज्ञाशून्य होकर काफी देर तक बैलगाड़ी में ही पड़े रहे। बाह्य चेतना लौटने के पश्चात भी उनके मन में आनंद की हिलोरें उठती रहीं।

इस प्रकार धीरे-धीरे विवेकानंद की आध्यात्मिक पिपासा और भी बढ़ने लगी, जागने लगी। वे सन् 1880 में कोलकाता के स्कॉटिश चर्च कॉलेज में बी॰ ए॰ के छात्र थे। वे अब जगत की क्षणभंगुरता तथा बौद्धिक शिक्षा की व्यर्थता का बोध करने लगे थे। अपनी बी॰ ए॰ की परीक्षा के पहले दिन ही उन्हें सहसा ईश्वर के प्रति सर्वग्राही प्रेम की अनुभूति हुई और वे अपने एक सहपाठी के कमरे के द्वार पर खड़े होकर भावुकतापूर्वक ईश्वरप्रेम में डूबकर गाने लगे—

हे पर्वतो! बादलो! हवाओ!
सब मिलकर उनकी महिमा गाओ।
हे सूर्य! हे चंद्र! हे तारकाओ!
आनंदपूर्वक प्रभु की महिमा गाओ।

मित्र ने विस्मित होकर नरेंद्र को अगले दिन होने वाली परीक्षा की याद दिलाई तो भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। फिर भी वे परीक्षा में बैठे एवं आसानी से सफल हुए।

समय के साथ-साथ ईश्वर को पाने, जानने की उनकी इच्छा तीव्र से तीव्रतर होती गई। उन्होंने इस हेतु तत्कालीन प्रसिद्ध धार्मिक नेताओं से भी भेंट की, किंतु उनसे भी उन्हें ईश्वर के अस्तित्व संबंधी प्रश्न का समाधान नहीं मिल सका। इससे उनकी आध्यात्मिक उत्कंठा और अधिक तीव्र हो गई। वे किसी ऐसे व्यक्ति से मिलना चाहते थे, जिसने स्वयं भी ईश्वर को देखा हो। ऐसे समय में उन्हें अपने अध्यापक विलियम हेस्टी के वे शब्द याद आए, जो उन्होंने वर्ड्सवर्थ की कविता 'दि एक्सकर्शन' पढ़ाते समय समाधि

के संदर्भ में कोलकाता के समीप दक्षिणेश्वर में रहने वाले संत श्रीरामकृष्ण परमहंस जी की चर्चा करते हुए कहे थे कि उनकी नजर में एकमात्र वे ही हैं, जिन्हें समाधि का अनुभव है। उनके चचेरे भाई रामचंद्र दत्त ने भी उन्हें श्रीरामकृष्ण के पास जाने को प्रेरित किया।

इस प्रकार सन् 1881 के नवंबर में वे श्रीरामकृष्ण परमहंस जी के पास पहुँचे। यह सचमुच दो महान आत्माओं का, गुरु और शिष्य का ऐतिहासिक मिलन था। नरेंद्र ने पूछा—''महाशय! क्या आपने ईश्वर को देखा है?'' श्रीरामकृष्ण ने तुरंत कहा—''हाँ! मैंने ईश्वर को देखा है, वैसे ही जैसे तुम्हें देख रहा हूँ, बल्कि उससे कहीं अधिक स्पष्टता से। ईश्वर को देखा जा सकता है। उनसे बातें की जा सकती हैं, परंतु उन्हें चाहता ही कौन है? लोग पत्नी-बच्चों के लिए, धन-दौलत के लिए घंटों आँसू बहाते हैं, परंतु ईश्वर के दर्शन नहीं हुए, इस कारण कौन रोता है? यदि कोई उन्हें हृदय से पुकारे तो वे अवश्य ही दर्शन देंगे।''

यह सुनकर नरेंद्र तो अवाक् रह गए। वे जीवन में पहली बार किसी ऐसे व्यक्ति से मिले, जो ईश्वर को देखने का दावा कर रहे थे। वे किसी के मुख से जीवन में प्रथम बार यह सुन रहे थे कि ईश्वर का दर्शन संभव है। उन्हें लगा कि श्रीरामकृष्ण अपनी आंतरिक अनुभूतियों की गहराई से बोल रहे हैं और उनकी बातों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। यही वह पल था, जब एक सच्चे अध्यात्मपिपासु शिष्य ने सच्चे गुरु के समक्ष संपूर्ण समर्पण कर दिया। अपने हृदय की पूर्ण गहराई के साथ नरेंद्र ने श्रीरामकृष्ण के समक्ष कुछ भजन गाए—

मन! चल घर लौट चलें।
इस संसाररूपी विदेश में
विदेशी का वेश धारण किए
तू वृथा क्यों भटक रहा है?

सौंदर्य, रूप, रस, गंध, स्पर्श—इंद्रियों के ये पाँच विषय तथा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ये पंचभूत इनमें से कोई भी तेरा अपना नहीं, सभी पराये हैं। तू क्यों व्यर्थ ही पराये प्रेम में पड़कर अपने प्रियतम को भूला जा रहा है?

गाना समाप्त होते ही श्रीरामकृष्ण ने सहसा नरेंद्र का हाथ पकड़ लिया। उनके गालों से होकर आँसुओं की धार बहती देखकर नरेंद्र के विस्मय की सीमा न रही। श्रीरामकृष्ण कहने लगे—''अहा! तू इतने दिनों बाद आया। तू बड़ा निर्मम है, इसीलिए तो इतनी प्रतीक्षा करवाई। विषयी भोगों की व्यर्थ की बकवास सुनते-सुनते मेरे कान सुलग गए हैं। दिल की बातें किसी को न कह पाने के कारण कितने दिनों से मेरा पेट फूल रहा है।'' फिर हाथ जोड़ते हुए बोले—''मैं जानता हूँ प्रभु! आप वे ही पुरातन ऋषि, नररूपी नारायण हैं, जीवों की दुर्गति नाश करने को आपने पुनः शरीर धारण किया है।''

श्रीरामकृष्ण के पास दूसरी बार आने पर नरेंद्र को और भी विचित्र अनुभव हुए। उनके आने के दो-चार मिनट बाद ही श्रीरामकृष्ण उनकी ओर बढ़ने लगे तथा अस्पष्ट स्वर में कुछ कहते हुए उनकी ओर देखने लगे, फिर सहसा अपना दाहिना पैर उन्होंने नरेंद्र के शरीर पर रख दिया। इस स्पर्श के साथ ही नरेंद्र ने खुली आँखों से देखा कि कमरे की दीवारें, मंदिर का आँगन और यहाँ तक कि पूरा विश्व-ब्रह्मांड ही घूमते हुए कहीं विलीन होने लगा। उनका अपना अहंभाव भी शून्य में लय होने लगा। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मृत्यु आसन्न है। वे चिल्ला उठे—''अजी, आपने मेरा यह क्या कर दिया? घर में माँ-बाप, भाई-बहन जो हैं।'' श्रीरामकृष्ण इस पर खिलखिलाकर हँस पड़े और नरेंद्र का सीना स्पर्श कर उनका मन सामान्य भूमि पर लाते हुए बोले—''अच्छा, तो अभी रहने दे। समय आने पर सब होगा।''

तीसरी बार दक्षिणेश्वर आने पर नरेंद्र ने यथासंभव सावधान रहने का प्रयास किया, परंतु इस बार उनकी हालत पहले जैसी ही हो गई। श्रीरामकृष्ण नरेंद्र को साथ लेकर पड़ोस के एक उद्यान में टहलने चले गए और भावसमाधि की अवस्था में उन्होंने नरेंद्र को स्पर्श किया। नरेंद्र अभिभूत होकर बाह्य चेतना खो बैठे।

इस घटना का उल्लेख करते हुए बाद में श्रीरामकृष्ण ने बताया था कि उस दिन नरेंद्र को अचेतन अवस्था में ले जाकर मैंने उसके पूर्वजीवन के बारे में उनकी बातें, जगत् में आने का उसका उद्देश्य तथा जगत् में उसके निवास की अवधि आदि पूछ लिए थे। श्रीरामकृष्ण ने अपने दूसरे शिष्यों को बताया था कि नरेंद्र ध्यानसिद्ध है, वह जन्म के पहले से ही पूर्णता की उपलब्धि कर चुका है और जिस दिन उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाएगा, उस दिन वह योगमार्ग से स्वेच्छापूर्वक देह त्याग देगा।

पूर्व की भाँति एक बार फिर जब नरेंद्र श्रीरामकृष्ण से मिलने दक्षिणेश्वर पहुँचे तो रामकृष्ण ने एक बार फिर नरेंद्र

का स्पर्श किया और फिर स्वयं गहन समाधि में डूब गए। उस स्पर्श ने जादू-सा असर किया और नरेंद्र को चेतना के नए ही जगत की अनुभूति होने लगी। वे देखने लगे कि संपूर्ण ब्रह्मांड ही ब्रह्म से ओत-प्रोत है। भावावस्था में वे घर लौटे। भोजन करते समय भी उन्हें सभी वस्तुओं में ब्रह्मानुभूति होने लगी। रास्ता चलते उन्होंने देखा कि गाड़ियाँ, घोड़े, भीड़-भाड़ और वे स्वयं भी मानो एक ही तत्त्व के बने हैं। इस प्रकार इस बार उन्हें अद्वैत की एक झलक भर मिली थी, जिसकी पूर्ण अनुभूति उन्हें परवर्तीकाल में होने को थी।

गुरु और शिष्य, दोनों एकदूसरे की परीक्षा लिया करते थे। नरेंद्र ने श्रीरामकृष्ण की परीक्षा कर उनके द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक सत्यों की पूरी जाँच कर ली और श्रीरामकृष्ण ने नरेंद्र की परीक्षा लेकर उनके शिष्यत्व और पात्रता की परीक्षा ली। इसी क्रम में एक दिन जब नरेंद्र दक्षिणेश्वर आए तो श्रीरामकृष्ण ने उनकी ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया, कुशल तक नहीं पूछा। एक सप्ताह बाद आने पर ठाकुर ने पुनः उनके प्रति वैसे ही उदासीनता दिखाई। तीसरी और चौथी बार आने पर भी श्रीरामकृष्ण का व्यवहार वैसा ही रहा।

ऐसे ही महीनाभर बीत जाने पर एक दिन उन्होंने नरेंद्र को निकट बुलाकर पूछा—"अच्छा, मैं तो तेरे साथ जरा-सी भी बात नहीं करता, तो भी बतला तू यहाँ क्यों आता है?" नरेंद्र ने कहा—"मैं आपसे प्रेम करता हूँ, आपको देखने की इच्छा होती है, इसलिए आता हूँ।" सुनकर श्रीरामकृष्ण आनंदविभोर हो उठे और आनंदातिरेक में नरेंद्र को आलिंगन पाश में बाँधते हुए बोले—"मैं तो तेरी परीक्षा मात्र ले रहा था। मैं यह देखना चाहता था कि उपेक्षा दिखाने पर कहीं तू भाग तो न जाएगा। तेरे जैसा आधार ही इतना सहन कर सकता है। दूसरा कोई होता तो कभी का भाग चुका होता।"

एक अन्य समय श्रीरामकृष्ण अपनी साधनाओं एवं अतींद्रिय अनुभूतियों द्वारा प्राप्त सिद्धियों को नरेंद्र के अंदर संचार कर देना चाह रहे थे। इस पर नरेंद्र ने पूछा—"क्या उन सिद्धियों से मुझे ईश्वरप्राप्ति में कुछ सहायता मिल सकेगी।" श्रीरामकृष्ण ने कहा—"नहीं, पर आचार्य के रूप में भावी कर्मों में अवश्य सहायक सिद्ध होंगी।" इस पर नरेंद्र ने कहा—"तो पहले ईश्वरलाभ हो जाए, फिर उन अलौकिक सिद्धियों को लेने या न लेने के बारे में सोचा जाएगा। उन्हें अभी स्वीकार कर लेने पर संभव है कि मैं ईश्वर को ही भूल जाऊँ और अपने स्वार्थ के लिए उनका दुरुपयोग कर सर्वनाश ही कर बैठूँ।"

अपने प्रिय शिष्य की अटल भक्ति देखकर श्रीरामकृष्ण को असीम आनंद हुआ। नरेंद्र ने श्रीरामकृष्ण के निर्देशन में अपनी ध्यानतन्मयता और भी बढ़ा दी तथा देहबोध से परे जाकर आंतरिक शांति का अनुभव करने लगे। ध्यान से उठने पर भी उनके मन में शांति का तारतम्य बना ही रहता था। उन्हें प्रायः ही यह अनुभव होने लगा कि आत्मा शरीर से पृथक है। स्वप्न में भी उन्हें दिव्य दर्शन होने लगे, जिसके फलस्वरूप जागने के बाद भी उन्हें एक विशेष आनंद का अनुभव होता रहता था।

सन् 1884 में पिता के देहावसान के बाद उनके परिवार पर विपत्ति आ गई। घर की माली हालत खराब हो गई। सो एक दिन वे रामकृष्ण से बोले—"जगन्माता तो आपकी प्रार्थना सुना करती हैं, तो फिर आप मेरे परिवार के दुःखनिवारण के लिए, जगन्माता से प्रार्थना कर दीजिए।" इस पर श्रीरामकृष्ण बोले—"तू स्वयं माँ के पास जाकर क्यों नहीं कह देता? आज मंगलवार है। आज रात काली मंदिर में जाकर माँ से तू जो भी माँगेगा, माँ उसे पूरा करेंगी। मेरी माँ प्रेम व करुणा की मूर्ति हैं। वे चिन्मयी ब्रह्मशक्ति हैं। उन्होंने अपनी इच्छा मात्र से जगत् को प्रसव दिया है।" रात को नौ बजे नरेंद्र ने काली मंदिर में प्रवेश किया। आँगन से होकर जाते हुए उन्हें भावावेश होने लगा, जगदंबा के दर्शन की आशा में उनका हृदय उछलने लगा।

देवालय में प्रवेशकर मूर्ति की ओर दृष्टिपात करने पर उन्हें लगा कि वहाँ पाषाण-प्रतिमा नहीं, साक्षात् जगदंबा ही विराज रही हैं और वे उनकी इच्छानुसार सांसारिक सुख अथवा आध्यात्मिक आनंद का कोई भी वर देने को प्रस्तुत हैं। वे भावविह्वल होकर बार-बार प्रार्थना करने लगे—"माँ! मुझे विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो, परंतु वे धन माँगना भूल गए।" वे लौटकर जब ठाकुर के पास आए तो ठाकुर ने कहा—"क्यों, माँ से गृहस्थी का अभाव दूर करने की प्रार्थना की है न?" तो नरेंद्र बोले—"नहीं महाराज! मैं तो भूल ही गया था।" ठाकुर के कहने पर नरेंद्र माँ के पास दोबारा गए, पर फिर भूल गए। तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ।

नरेंद्र ठाकुर माँ की लीला समझ गए। वे समझ गए कि माँ चाहती हैं कि मैं त्यागमय जीवन जीऊँ, पर ठाकुर

ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा कि उनके परिवार को भोजन-वस्त्र का अभाव नहीं रहेगा। उपर्युक्त घटना नरेंद्र के मन पर गहरी छाप छोड़ गई। इससे उन्हें ईश्वर एवं जागतिक कार्यों के बारे में एक नवीन प्रकाश की उपलब्धि हुई। अब उन्हें बोध हुआ कि ईश्वर अपनी संपूर्ण सृष्टि में ओत-प्रोत हैं। एक अन्य दिन श्रीरामकृष्ण ने नरेंद्र से कहा—"ईश्वर रस के समुद्र हैं। क्या तू इस समुद्र में डुबकी लगाएगा। अच्छा, मान ले एक नाद में रस है और तू मक्खी हो गया है, तो तू कहाँ बैठकर रस पिएगा?" नरेंद्र ने कहा—"मैं नाद के किनारे बैठकर रसपान करूँगा; क्योंकि ज्यादा बढ़ने पर डूब जाऊँगा और इस प्रकार जान से भी हाथ धोना पड़ेगा।"

इस पर ठाकुर बोले—"बेटा! तू क्यों भूल जाता है कि वह सच्चिदानंद सागर है। मैं अमृत के सागर की बात कर रहा हूँ। इसमें मृत्यु का भय नहीं है। मूर्ख लोग ही कहा करते हैं कि भक्तिभाव में अति उचित नहीं। भला कहीं ईश्वरप्रेम में भी अति हो सकती है? सच्चिदानंद सागर में गहराई तक डूब जा।" सचमुच यदि हम भी अपने जीवन में ईश्वरलाभ करना चाहते हैं, अपने प्रियतम को पाना चाहते हैं तो हमें भी इस सच्चिदानंद सागर में अब उतर ही जाना चाहिए; क्योंकि इसमें डूबने का कोई भय नहीं। क्यों न हम भी नित्य दिन ऐसे ही महापुरुषों की आध्यात्मिक अनुभूतियों के सागर में डूब-डूबकर चित्त की शुद्धि कर लें और परमात्मा को पाकर भवसागर से पार चले जाएँ। □

चीन में उन दिनों कुछ थोड़े से शहरों को छोड़कर शेष स्थानों में विदेशियों के प्रवेश पर रोक लगा दी गई थी। कभी भूल से कोई विदेशी वहाँ पहुँच जाता तो चीनी मरने-मारने को उतारू हो जाते, उसकी जान संकट में पड़ जाती। एक बार स्वामी सत्यानंद चीन-भ्रमण पर गए। उनकी किसी चीनी गाँव के भ्रमण की इच्छा हुई। साथ चल रहे दो दर्जन जर्मन पर्यटकों की भी इच्छा ग्राम्य जीवन देखने की थी, पर साहस के अभाव में उनकी प्रवेश की हिम्मत नहीं हो रही थी। उन्होंने यह बात स्वामी जी से कही तो स्वामी जी ने कहा—"सारी मनुष्य जाति एक है, हमें विश्वास है कि यदि हम सच्चे हृदय से वहाँ के लोगों से मिलने चलें तो वे हमें मारने की अपेक्षा प्रेम से ही मिलेंगे।"

स्वामी जी जर्मन पर्यटकों को लेकर गाँव की ओर चल पड़े। दुभाषिया उसके लिए तैयार नहीं हो रहा था, पर जब स्वामी जी नहीं रुके तो वह भी साथ चला तो गया, पर अंत तक उसे यही भय बना रहा कि कहीं वे लोग उन्हें मारें नहीं। गाँववाले विदेशियों को देखकर लाठी मारने दौड़े। स्वामी सत्यानंद ने उनकी आँखों में आँखें डालते हुए कहा—"क्या आप लोग अपने भाइयों से प्रेम नहीं करते?" दुभाषियों ने यही प्रश्न उनकी भाषा में ग्रामीणों से पूछा तो वे बेचारे लज्जित हुए और लाठी फेंककर स्वामी जी के स्वागत-सत्कार में जुट गए। आश्चर्यचकित जर्मनसाथियों को संबोधित कर स्वामी जी बोले—"यह शांति और मानवता की शक्ति का चमत्कार है। इनके माध्यम से किसी पर भी, यहाँ तक कि शत्रु पर भी विजय पाई जा सकती है।"

स्वयं को माफ करना न भूलें

प्राय: लोग जाने-अनजाने हुई गलतियों के लिए दूसरों से माफी माँगते हैं, यह अच्छी बात है, लेकिन जो गलतियाँ हम अपने साथ करते हैं, क्या हम उनके लिए खुद से माफी माँगते हैं ? अपनी गलतियों की क्षमा के लिए हम दूसरों को खूब मनाते हैं, लेकिन क्या हम खुद को माफ करने के लिए स्वयं को मनाते हैं ?

जैसे-जैसे जीवन में हम बड़े होते हैं, हमारे विचार भी समय के साथ नया आकार लेते हैं, वो भी बड़े होते जाते हैं, परिपक्व होते जाते हैं। जिन बच्चों के मन में बचपन से ही किसी-न-किसी तरह की आत्महीनता की भावना पैदा हो जाती है, उनके बड़े होने पर यह आत्महीनता की ग्रंथि उनके मन में जड़ पकड़ लेती है कि वे दूसरों से अच्छे नहीं हैं, कहीं-न-कहीं उनमें बहुत-सारी कमियाँ हैं और वो उन्हें दूर नहीं कर सकते।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार—ज्यादातर मरीजों की समस्या के पीछे यही हीनभावना काम कर रही होती है। कोई अपने रूप-रंग से दु:खी होता है, तो किसी को यह लगता है कि वह कोई काम ठीक ढंग से नहीं कर सकता, कोई अपने जीवन में बुरी तरह से असफल रहता है, तो कोई पिछली भूलों के लिए खुद को ही कोसता रह जाता है।

इन सबका कारण है कि व्यक्ति के मन में आत्महीनता की ग्रंथि बसी हुई है, जिसके कारण वह खुद को उतना सम्मान नहीं देता, जितना वह दूसरों को देता है। वह दूसरों को जितना सुनना व समझना चाहता है, उतना वह अपने अंतर्मन की बात नहीं सुनता है और न ही समझता है। व्यक्ति दूसरों को खुश करने में लगा रहता है, लेकिन स्वयं को प्यार करने, स्वयं को खुश रखने की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता।

व्यक्ति का ध्यान जिस ओर जाता है, वह उसी दिशा में कार्य करने लगता है। जब किसी का ध्यान स्वयं से हटकर आस-पास रहने वाले लोगों पर केंद्रित होता है, तो ऐसा व्यक्ति स्वयं की क्षमताओं पर विश्वास नहीं कर पाता। वह सदैव अपनी कमियों को ही देखता है और अपनी खूबियों को नजरअंदाज करता है। वैसे कमियाँ तो हर व्यक्ति में हैं, लेकिन आगे वही बढ़ पाते हैं, जो अपनी कमियों को स्वीकारते हुए उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं और अपनी क्षमताओं में नित-निरंतर निखार लाते हैं।

आत्महीनता से ग्रसित व्यक्ति न अपने मन की सुनता है और न तन की। यदि शरीर आराम चाहता है, तो भी उसकी बात अनसुनी करके उससे अधिक-से-अधिक काम लेता है। दिमाग शांति चाहता है, लेकिन तरह-तरह के विचारों के कूड़ा-करकट से उसका दिमाग आक्रांत रहता है, परेशान रहता है। अत: ऐसे व्यक्ति खुलकर अपनी अभिव्यक्तियाँ नहीं देते, बल्कि स्वयं को दबाकर रखते हैं।

जब व्यक्ति स्वयं को कमजोर समझता है, अपने प्रति गलत दृष्टिकोण रखता है, अपने विषय में नकारात्मक ढंग से सोचता है, तो ऐसा व्यक्ति कोई भी बड़े काम नहीं कर पाता; क्योंकि उसे अपनी खूबियों पर भरोसा ही नहीं होता, वह स्वयं के प्रति लापरवाह होता है, और वह अपने समय का भी सम्मान नहीं करता। उसे लगता भी नहीं कि वह अपने प्रति कुछ गलत कर रहा है।

ऐसा व्यक्ति जब तक स्वयं को माफ नहीं करता, जिंदगी में आगे नहीं बढ़ पाता। खुद को माफ करने का मतलब यह नहीं कि वह अपनी गलती माने या हर स्थिति में अपनी गलतियों को स्वीकारे। **खुद को माफ करने का मतलब है—खुद को समझना**। यह हमारी गलती ही तो है कि अपनी बेहतरी के लिए हमें जो करना था, जो हम कर सकते थे, वह हमने नहीं किया। जीवन में वह काम हमने किया, जो हमारे तन व मन को बीमार बना रहा था। हमें खुद से माफी माँगनी ही चाहिए कि हम खुद को गलत बातों के लिए कोसते रहे, खुद को ठेस पहुँचाते रहे, अपनी कमियों के कारण न खुद को प्यार कर सके और न खुद पर भरोसा कर पाए।

मनोविशेषज्ञों के अनुसार—खुद को माफ करने का मतलब अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ना नहीं है। यह बेचारगी यानी खुद पर तरस खाने की बात भी नहीं है। यह

खुद के प्रति एक तरह से जवाबदेही है, जो हमें बड़े बदलाव की ओर ले जाती है।

हमें अपनी गलतियों के लिए दूसरों से माफी माँगनी चाहिए, लेकिन उन गलतियों के लिए स्वयं से भी माफी माँगनी चाहिए, जो हमने अपने प्रति की हैं। बौद्ध दर्शन के अनुसार—घृणा, हीनता, या खुद को कोसते रहना ऐसे भाव हैं, जिनसे न तो दूसरों का भला होता है, और न ही हमारा। इनसे हमारे तन-मन पर कुंठा, उदासी, निराशा और भाँति-भाँति के रोगों की परतें चढ़ती रहती हैं। ये हम पर ही नहीं, औरों पर भी अपना नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। इसलिए अपनी गलतियों को मानकर सच का सामना करना ही एक तरह से भूल-सुधार है।

जैन तीर्थंकर महावीर प्रायश्चित का रास्ता संवर और निर्जरा में बताते हैं। संवर यानी नई गलतियाँ करने से खुद को रोकना और निर्जरा यानी पुरानी गलतियों को सुधारना। यदि हमने दूसरों को दुःख पहुँचाया है तो उनसे माफी माँगें और यदि खुद को दुःख पहुँचाया है तो खुद से भी माफी माँग लें।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव आत्मिक प्रगति के चार चरण बताते हैं—आत्मचिंतन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण, आत्मविकास। इनमें पहला चरण जो आत्मचिंतन है, उसमें हम अपने बारे में सोचते हैं और अपने किए जाने वाले कर्मों को देखते हैं, यदि हमसे अतीत में कोई गलती हुई है, तो उस भूल को सुधारने का प्रयास करते हैं, उसके लिए प्रायश्चित करते हैं और उस गलती को दोबारा न दोहराने का संकल्प लेते हैं। ऐसा करने से आत्मसुधार होता है, हम ग्रंथिमुक्त होते हैं और धीरे-धीरे इस प्रक्रिया का अभ्यास करने से हमारे व्यक्तित्व में एक नए तरह का बदलाव आता है और इसी के साथ हमारा आत्मविकास भी होता है।

युगऋषि का कथन है कि अपना महत्त्व समझो और विश्वास करो कि तुम दुनिया के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो। युगऋषि का यह कथन और इसका मनन व्यक्ति को आत्महीनता की मनोग्रंथि से मुक्त करता है और उसके अंदर आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना को सुदृढ़ करता है।

यदि हम दूसरों से माफी माँगें तो हो सकता है कि वो हमें माफ करें या न करें, लेकिन खुद को तो हम अपनी गलतियों के लिए माफ कर ही सकते हैं। हमारे आत्मविकास के लिए, जीवन में आगे बढ़ने के लिए यह बहुत जरूरी है कि हम अपनी गलतियों को स्वीकारें, खुद को उन गलतियों के लिए माफ करें और उन्हें दोबारा न दोहराने के संकल्प के साथ जीवन में आगे बढ़ें। ऐसा करने से ही व्यक्तित्व का समग्र विकास सुनिश्चित हो पाता है। ❑

महर्षि अत्रि की एक पुत्री थी। नाम था उसका अपाला। कुछ बड़ी हुई तो उसके शरीर पर श्वेत कुष्ठ हो गया। बहुत उपचार करने पर भी अच्छा न हुआ, वरन बढ़ता गया। पुत्री विवाह-योग्य हुई तो वर खोजा गया। उस विदुषी के ज्ञान की प्रशंसा सुनकर अनेक वर आए, पर श्वेत दागों को देखकर वापस लौट गए। ऋषि-शिष्य वृताश्व ने बिना कुछ पूछताछ किए ही भावावेश में पाणिग्रहण कर लिया।

बाद में वृताश्व ने जब चर्म दोष देखा तो वे उदास हो गए। कभी ऋषि को, कभी अपाला को, कभी अपने को दोष देने लगे। किसी पर भार बनने की अपेक्षा अपाला अपने पिता के यहाँ वापस लौट गई। उसने अपना समस्त ध्यान अध्ययन एवं तप के लिए नियोजित कर दिया। उसकी प्रवीणता ने उसकी गणना वरिष्ठ ऋषियों में कराई। चर्म दोष की तुलना में ज्ञान और चरित्र की गरिमा भारी पड़ी।

धरती के गर्भ से फूटते प्रकृति के विशिष्ट उपहार



गरम जलस्रोत प्रकृति द्वारा मानव के लिए विशिष्ट उपहार हैं, खासकर ठंढे-बरफीले क्षेत्रों के लिए, जहाँ सरदी में तापमान माइनस डिगरी तक गिर जाता है। जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर देने वाली ऐसी ठिठुरनभरी सरदी में गरम जल के स्रोत दैवी उपहार जैसे प्रतीत होते हैं, जो लोकजीवन को सरल बना देते हैं, साथ ही उनमें निहित चिकित्सीय गुण उनमें डुबकी लगाने वालों को अतिरिक्त लाभ देते हैं।

भारत के लगभग हर क्षेत्र में ऐसे जलस्रोत न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। उत्तराखंड के हिमालयी प्रांत में ऐसे कई गरम जल के स्रोत हैं। बदरीनाथ तीर्थक्षेत्र में ऐसे गरम जल का प्राकृतिक स्रोत है, जिसे एक कुंड में संगृहीत किया गया है, बाहर पाइपों के माध्यम से यह नलकों में प्रवाहित होता है। लंबी यात्रा से आए थके यात्री इसमें डुबकी लगाकर एवं स्नानकर तरोताजा होकर बाहर निकलते हैं व फिर बदरीविशाल के दर्शन करते हैं। हालाँकि शुरुआत में कुंड का जल थोड़ा गरम प्रतीत होता है, लेकिन थोड़ी देर में शरीर इसका अभ्यस्त हो जाता है। अलकनंदा नदी के किनारे स्थित यह गरम जल का कुंड किसी वरदान से कम नहीं है।

केदारनाथ धाम की यात्रा के शुरुआती पड़ाव गौरीकुंड में भी ऐसे गरम जल के स्रोत विद्यमान हैं, हालाँकि 2016 की प्राकृतिक त्रासदी में ये तहस-नहस हो गए थे, लेकिन अभी भी यहाँ से जल निस्सृत हो रहा है। ये मध्यम एवं सहनीय गरमी लिए रहते थे, जिनसे पावन होकर तीर्थयात्री केदारनाथ धाम की ओर कूच करते थे या वापसी में यहाँ से तरोताजा होकर घर की ओर वापस लौटते थे। मान्यता है कि यहाँ माता पार्वती ने अपने आराध्य शिव के लिए तप किया था।

यमुनोत्तरी धाम में भी तप्तकुंड है, जिसे सूर्यकुंड के नाम से जाना जाता है। इसका खौलता पानी काफी गरम रहता है। इसमें चावल या आलू डालने पर ये पक जाते हैं और इन्हें प्रसाद रूप में तीर्थयात्री उपयोग करते हैं। इसी तरह गंगोत्तरी धाम के रास्ते में गंगनानी स्थान पर गरम जल का स्रोत है, जिसका लुत्फ पर्यटक एवं तीर्थयात्री उठाते हैं। जोशीमठ के आगे मलांग के रास्ते में तपोवन स्थान पर भी ऐसा गंधकयुक्त गरम जल का स्रोत है। कुमायूँ के मुन्स्यारी क्षेत्र में शहर से 20 किमी० दूर मदकोट स्थान पर गौरीगंगा नदी के बाएँ तट पर गरम जल के स्रोत हैं, जिनका जल गंधक व चूने का विशेष अंश लिए होता है, जिसकी झलक यहाँ के जलस्रोत की तह में सफेद एवं लाल-भूरे रंग के अवशिष्ट एवं चट्टानों को देखकर पाई जा सकती है। त्वचा-रोगियों के लिए यह जल विशेष रूप से उपयोगी बताया जाता है।

इसी तरह हिमाचल के पहाड़ी राज्य में गरम जल के कई स्रोत हैं, जो यात्रा को सरल एवं रोचक बनाते हैं। शिमला के समीप सतलुज नदी के किनारे, ततापानी नामक स्थान पर नदी के तट पर गरम जल के स्रोत हैं—जहाँ खुली हवा में यात्री स्नान का आनंद लेते हैं, जिनमें स्नान चर्म व जोड़ों के रोगों को ठीक करता है। एक ओर सतलुज का बरफीला जल बह रहा होता है, तो इसी के साथ तट पर गरम जल उफन रहा होता है, जो आगे चलकर सतलुज नदी में मिलता है।

मणिकर्ण घाटी में, खीरगंगास्थल पर गरम पानी का कुंड स्वयं में अनूठा है। प्रकृति की गोद में, गगनचुंबी पहाड़ों के बीच खुले में स्थित यह कुंड पर्यटकों एवं तीर्थयात्रियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहता है। इसके पास में ही शिवमंदिर है, हालाँकि इस तीर्थस्थल को शिव-पार्वती नंदन कार्तिकेय से जुड़ा माना जाता है।

मणिकर्ण गाँव गरम जलस्रोतों के लिए प्रख्यात है। यहाँ के गुरुद्वारे एवं राममंदिर परिसर में कई गरम जल के कुंड विद्यमान हैं। यहाँ स्नान के लिए दोनों स्थलों पर कुंड बने हुए हैं, साथ ही दोनों जगह खौलते पानी के कुंड भी हैं, जिनमें तीर्थयात्रियों को आलू, आटा व चावल आदि को पोटली में बाँधकर पकाते हुए देखा जा सकता है, जो बाद

में प्रसाद के रूप में काम आते हैं। यहाँ पूरे गाँव के घरों में पाइपों से इसी गरम जल की आपूर्ति होती है।

मनाली के समीप वसिष्ठ गाँव में भी ऐसे ही गरम जल के स्रोत हैं। यहीं ऋषि वसिष्ठ एवं भगवान राम को समर्पित मंदिर भी हैं। यहाँ के जल को भी औषधीय गुणों से युक्त माना जाता है। मनाली के 6-7 किमी० पहले क्लाथ स्थान पर भी ऐसे ही गरम जलस्रोत हैं, हालाँकि पिछले दिनों बाढ़ में व्यास नदी के किनारे इनको खासी क्षति हुई है।

हिमालय के लद्दाख क्षेत्र में पनामिक स्थान पर नुब्रा घाटी में भी ऐसे गरम जल के स्रोत हैं। यहाँ का पानी इतना गरम होता है कि कोई इसमें हाथ भी नहीं डाल सकता। इसी तरह पूर्वोत्तर क्षेत्र में कई ऐसे जलस्रोत हैं। सिक्किम के 15,500 फीट की ऊँचाई पर स्थित यूमेसमडोग स्थान पर गंधकयुक्त जल के दर्जन से अधिक स्रोत हैं, जिनका ताप 59 डिगरी सेंटीग्रेट तक रहता है। इसी तरह सिक्किम में रेशि, बोरोंग, रेलोंग व यूमथंग स्थान पर गरम जल के स्रोत हैं, जो अपने औषधीय गुणों के लिए जाने जाते हैं।

इनके अतिरिक्त भारत के अन्य प्रांतों में भी ऐसे जलस्रोत हैं, जो चिकित्सीय महत्त्व के साथ अपना धार्मिक महत्त्व भी रखते हैं। इन सब स्थलों के भूगोलीय कारण तो पृथ्वी की कोख में सुलग रहे गरम मेग्मा में देखे जा सकते हैं, जो पृथ्वी की सतह पर विद्यमान जल को गरम करता है व दबाव के कारण धरती पर गरम जलस्रोत के रूप में फूटता है। इनसे जुड़े आध्यात्मिक प्रसंग इन्हें आस्था का केंद्र बनाते हैं। साथ ही ठिठुरती सरदी के दिनों में ये गरम जलस्रोत मनुष्य ही नहीं अन्य जीवधारियों के लिए भी राहत की सौगात लेकर आते हैं। इनमें डुबकी लगाने पर सहज ही प्रकृति की हमारे प्रति उदारता स्मरण हो उठती है व हृदय उसके प्रति कृतज्ञता के भावों से भर उठता है। ❑

मैक्समूलर ने एक पुस्तक लिखी है—'इंडिया: व्हाट केन इट टीच अस।' इस पुस्तक को पढ़ने से उनकी भारत के प्रति अगाध श्रद्धा-भाव का पता लगता है। वे लिखते हैं कि 'मैं विश्वभर में उस देश को ढूँढ़ने के लिए चारों दिशाओं में दृष्टि दौड़ाऊँ, जिस पर प्रकृति देवी ने अपना संपूर्ण वैभव, पराक्रम एवं सौंदर्य मुक्त हाथों से लुटाकर उसे पृथ्वी का स्वर्ग बना दिया है तो मेरा इशारा भारत की ओर होगा। यदि मुझसे पूछा जाए कि अंतरिक्ष के नीचे वह कौन-सा स्थल है, जहाँ मनुष्य ने अपने अंतराल में सन्निहित ईश्वरप्रदत्त उदात्त भावों को पूर्णरूपेण विकसित किया है तथा जीवन की गहराई में उतरकर कठिनतम समस्याओं पर विचार किया है। उनमें अधिकांश को सुलझाया है।

'यह सब जानकर 'कांट' एवं 'प्लेटो' जैसे दार्शनिकों से प्रभावित मनीषी भी आश्चर्यचकित रह जाएँ, वे पूछें कि वह देश कौन-सा है तो मेरी उँगली सहज ही भारत की ओर उठेगी और यदि मैं अपने आपसे प्रश्न करूँ कि हम यूरोपवासी जो अब तक केवल ग्रीक, यहूदी एवं रोमन विचारों में पलते रहे हैं, किस साहित्य से वह प्रेरणा ले सकते हैं, जो हमारे अंतरंग जीवन को परिशोधित करे, उसे उन्नति की ओर अग्रसर करे, व्यापक एवं विश्वजनीन बनाए, सही अर्थों में मानवीय गुणों से सुसंपन्न करे, जिससे हमारे पंचभौतिक जीवन को ही नहीं हमारी सनातन आत्मा को भी प्रेरणा मिले तो पुन: मेरी उँगली भारत की ओर उठ जाएगी।'

परम भक्त सदन कसाई



प्राचीन समय की बात है। सदन का जन्म एक कसाई परिवार में हुआ था। जो पशुओं का मांस बेचकर अपनी गुजर-बसर करता था। अपने पूर्वजन्म के संस्कार के कारण सदन कसाई भगवान के परम भक्त थे। बचपन से ही उन्हें हरिनाम-जप, भजन-कीर्तन में विशेष अनुराग था। यहाँ तक कि अपनी दुकान में मांस बेचते हुए भी वे मन-ही-मन हरिनाम-सुमिरण, स्मरण किया करते थे। मानो उनकी काया तो दुकान में बैठी होती थी, पर उनकी आत्मा ईश्वर के परम आनंद में निमग्न रहती थी। उनके चेहरे पर सदा स्वर्गीय मुस्कान छाई रहती थी। उनका हृदय करुणा से इतना भरा होता था कि जीवहत्या के बारे में सोचते ही उनकी रूह काँप उठती थी। इसलिए आजीविका के लिए वे मांस बेचते जरूर थे, पर वे वह मांस दूसरों के यहाँ से लाकर बेचते थे। वे स्वयं पशुवध नहीं करते थे।

कहते हैं कि यदि भक्ति सच्ची हो, प्रेम सच्चा हो तो भगवान ऐसे भक्त को किसी-न-किसी रूप में उसके प्रेम का प्रत्युत्तर अवश्य ही देते हैं। भगवान भक्त से दूर रह ही नहीं सकते और फिर सदन का मन तो हरिचरणों में ऐसा रम गया था कि वे भगवान को पलभर के लिए भी नहीं भूल पाते थे। सदन को भगवान की पूजा का कोई शास्त्रीय विधान भले ही पता न था, पर उनका हृदय सचमुच ईश्वरप्रेम से परिपूर्ण था। प्रेम में मग्न सदन को तो यह भी पता नहीं था कि जिस पत्थर को बाट बनाकर वे अपनी तुला पर रखकर मांस तौलते हैं, वह कोई साधारण पत्थर नहीं, बल्कि वह तो साक्षात् शालग्राम भगवान हैं, जिन्हें भक्त लोग पूजावेदी पर रखकर नानाविध शास्त्रीय उपचारों से उनका पूजन करते हैं।

एक दिन अचानक ऐसा हुआ कि एक साधु सदन की दुकान के सामने से गुजर रहे थे कि सहसा उनकी नजर उस शालग्राम पत्थर पर पड़ गई। वे शालग्राम जी को पहचान गए। एक मांसविक्रेता के यहाँ अपवित्रस्थल पर शालग्राम जी को देखकर साधु को बड़ा दुःख हुआ। सो सदन से माँगकर वह शालग्राम जी को अपने साथ ले गए। सदन ने भी खुशी-खुशी वह पत्थर साधु को दे दिया। साधु बाबा अपनी कुटिया पर पहुँचे। उन्होंने शालग्राम जी को नानाविध तरीके से साफ-सुथरा कर, जलाभिषेक कर उन्हें पूजावेदी पर स्थापित किया। शास्त्रीय विधिविधान से उनका पूजन किया। आरती उतारी। साधु बाबा मन-ही-मन सोच रहे थे कि वह मांसविक्रेता शालग्राम जी को न जाने कब से कितनी अपवित्र जगह पर रखे रहा होगा। उससे शालग्राम भगवान को न जाने कितनी पीड़ा हुई होगी। अच्छा हुआ उन पर मेरी नजर पड़ गई और मैं उन्हें अब पवित्रस्थल पर स्थापित कर सका।

संध्यावंदन के पश्चात साधु बाबा रात्रि विश्राम करने लगे। देखते-देखते वे गहरी निद्रा में चले गए। उस गहन निद्रा में ही उन्होंने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि शालग्राम भगवान उन्हें कह रहे हैं—"तुम मुझे मेरे सदन के पास से उठाकर यहाँ क्यों ले आए ? मैं तो अपने भक्त सदन के पास रहकर ही बहुत आनंदित रहता था। वहाँ मुझे परम सुख का अनुभव होता था। वह मुझ पर भले ही जल, अक्षत, चंदन आदि कुछ भी नहीं चढ़ाता था। वह मुझे भले ही मांस तौलने वाली तुला पर बाट बनाकर रखता था, पर निर्दोष मन वाला, निष्कपट, निश्छल सदन जब मांस तौलने के लिए मुझे अपनी हथेली में लेकर मेरा स्पर्श करता था, तो उसके स्पर्श से मेरा रोम-रोम आनंद से पुलकित हो उठता था। वह जब भी मांस लेने आए अपने ग्राहकों से सच्चे हृदय से बातें करता था, तो उसके हरेक शब्द ही मुझे मधुर स्तोत्र जान पड़ते थे। उसकी वाणी से स्वत: ही स्तोत्र झरते हुए जान पड़ते थे। जब कभी वह मेरा नाम सुमिरन-स्मरण और कीर्तन किया करता था तब तो मेरे आनंद की कोई सीमा ही नहीं होती थी। सो हे महात्मन्! तुम मुझे मेरे सदन के पास ही पहुँचा दो। वह जहाँ भी है, वही वैकुंठ है और मैं उसके साथ उसी वैकुंठ में रहना चाहता हूँ। उसके हृदयस्पर्शी साथ के बिना मुझे एक-एक पल गुजारना बड़ा भारी लग रहा है।"

स्वप्न समाप्त होते ही साधु महाराज की निद्रा भंग हुई। सुबह होते ही वह शालग्राम जी को लेकर सदन के घर पहुँच गए। साधु बाबा ने सदन को सारी बातें बताईं। सदन को यह जानकर बहुत क्लेश हुआ कि वह जिसे पत्थर मानकर, बाट बनाकर उससे मांस जैसी अपवित्र वस्तु तौलता रहा, वह शालग्राम भगवान हैं, जिनकी पूजा की जाती है। उसे अपनी भूल पर भारी ग्लानि हुई। उसकी आँखों में पश्चात्ताप के आँसू भर आए। उसके आँसुओं से ही शालग्राम जी का नैसर्गिक अभिषेक होने लगा। अब उसे अपने व्यवसाय से ही घृणा हो गई।

उसने शालग्राम जी की साफ-सफाई कर उनका अभिषेक-पूजन किया और उन्हें एक पोटली में बड़े प्यार से सहेजकर, रखकर भगवान श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को चल पड़ा। लंबी यात्रा थी। सो जब शाम होने को आई तो वह एक गाँव में एक गृहस्थ के घर ठहर गया। उस घर में नवविवाहिता पति-पत्नी रहते थे। मध्यरात्रि का पहर था। सदन अतिथिकक्ष में सो रहे थे कि तभी उनके कक्ष में कुछ हलचल हुई। उनकी आँखें खुल गईं। देखा, सामने उस गृहस्थ की पत्नी कामुक भावदशा में खड़ी है। वह बोली—''पथिक! मैं तुम्हारे आकर्षक रूप-लावण्य पर रीझ गई हूँ। तुम मेरी कामना पूरी करो।''

ऐसे क्षण में ही तो साधक की साधना की गहराई व भक्त की भक्ति की गहराई की अग्निपरीक्षा होती है; क्योंकि बिना परीक्षा के भक्ति का, साधना का परीक्षण भी तो नहीं होता। ऐसी परीक्षा में, ऐसे क्षण में जिसने अपने धर्म की रक्षा कर ली, जिसने अपने चरित्र की रक्षा कर ली—वस्तुतः वही सच्चा साधक है, सच्चा सूरमा है, सच्चा योद्धा है। कहते हैं ऐसे क्षण में जो धर्म से स्खलित न होकर, पतित न होकर धर्म की रक्षा कर लेता है, तब धर्म भी उसकी रक्षा अवश्य ही करता है।

जैसा कि कहा गया है—'**धर्मो रक्षति रक्षितः**।' सदन के जिस हृदय में साक्षात् शालग्राम विराज रहे थे, जिस हृदय में भगवत्प्रेम की ऊँची-ऊँची तेज लहरें उठ रही थीं—उस हृदय में काम की लहरें उठतीं भी तो कैसे? सो सदन पर उस कामिनी के कामुक रूप का कोई असर नहीं हुआ। उसे तो उस कामिनी स्त्री में भी पवित्रता की मूरत दिखाई पड़ रही थी, सो उसने हाथ जोड़कर कहा—''माते! तुम तो ममतामयी हो, प्रेममयी हो, वात्सल्यरूपी हो। इसलिए तुम अपने बच्चे की परीक्षा मत लो माँ।'' पर कामातुर स्त्री तो काम के वश में थी सो उसने सोचा कि लगता है कि यह मेरे पति से भयभीत है। इसलिए यह ऐसी बातें कर रहा है। सो उसने कहा—'' तुम्हें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि मैंने अपने पति का सिर काट डाला है। अब मेरे-तुम्हारे मार्ग में कोई बाधा नहीं है। तुम अब निर्भय होकर मेरी कामना पूरी करो।''

जिसकी चेतना परम चेतना से जुड़ चुकी थी, उस पर इन कामुक बातों का कोई असर कैसे होता, पर उस स्त्री ने फिर कहा—''यदि तुमने मेरी बात नहीं मानी, तो तुम्हें इसके गंभीर दुष्परिणाम भुगतने होंगे।'' पर धर्म की, चरित्र की रक्षा में सद्भक्त कहाँ डरता है? स्त्री अपने द्वार पर छाती पीट-पीटकर रोने लगी। उसका रुदन सुनकर गाँव के लोग इकट्ठे हो गए। उसने कहा—''यह यात्री रात्रि में मेरे घर ठहरा था। मुझे देखकर इसकी नीयत खराब हो गई। इसने मेरे पति की हत्या कर दी है।'' लोगों ने सदन को काफी भला-बुरा कहा, मारा-पीटा, दुत्कारा पर सदन ने कोई सफाई नहीं दी।

मामला न्यायाधीश के पास पहुँचा और सजा के रूप में सदन के दोनों हाथ काट लिए गए। यदि भक्ति परिपक्व न हो, साधना गहरी न हो तो तुरंत ही व्यक्ति का ऐसी स्थिति में ईश्वर से विश्वास उठ जाता है। पर सद्भक्त तो विपरीत-से-विपरीत परिस्थितियों को भी ईश्वर का प्रसाद ही समझता है; क्योंकि उसे इसका बोध होता है कि कोई भी घटना अकारण नहीं घटती। उसका कुछ-न-कुछ तो उसके जीवन से संबंध होगा ही। अस्तु ऐसे समय में भी वह धैर्य बनाए रखता है। भक्ति बनाए रखता है। वह अपने पथ पर, अध्यात्म पथ पर अग्रसर रहता है, बढ़ता ही जाता है; क्योंकि उसे लगता है बढ़ते जाने से कभी-न-कभी उसकी मंजिल तो आएगी ही। पर जो रुक गया, उसका क्या?

सो कटे हाथों के बाद भी सदन श्री जगन्नाथ भगवान का स्मरण करते हुए जगन्नाथपुरी की ओर बढ़ते रहे, चलते रहे, थके भी, पर रुके नहीं। जो रुकता नहीं, उसकी मंजिल तो एक दिन आ ही जाती है, मिल ही जाती है। अब जगन्नाथपुरी का धाम कुछ ही दूर पर था। वे बढ़े जा रहे थे। उधर जगन्नाथपुरी के पुजारी को भगवान ने स्वप्न में आदेश दिया—''देखो! मेरा सदन, मेरा भक्त मेरे पास आ रहा है। उसके हाथ कट गए हैं, पर वह फिर भी आ रहा है।''

भगवान के कमलनयनों से अश्रु झर रहे थे—सदन की भक्ति को देखकर।

भगवान ने फिर कहा—''पुजारी तुम पालकी लेकर जाओ, और मेरे सदन को उसमें बैठाकर मेरे पास लाओ। उससे मिलने को मैं भी आतुर हूँ।'' भगवान के आदेशानुसार पुजारी पालकी लेकर उस मार्ग की ओर गए। देखा सचमुच एक व्यक्ति जिसके दोनों हाथ कटे हैं, वह इधर ही आ रहा है। पुजारी ने बड़े आग्रह, विनती कर के सदन को पालकी में बैठाया और उन्हें लेकर मंदिर के पास ले आए। सदन मंदिर में भगवान जगन्नाथ के दर्शन करते ही आनंदविभोर हो गए। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

भगवान का कीर्तन करने को उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ उठाईं और उनके नेत्र फिर से भर आए। तभी उन्होंने देखा कि प्रभुकृपा से उनके दोनों कटे हाथ पूर्ववत् हो गए हैं, दोनों हाथ ठीक हो गए हैं। प्रभुकृपा से उनके हाथ तो ठीक हो गए, पर रात्रि विश्राम करते हुए उनके मन में ये विचार आते रहे कि भला हमने ऐसे कौन से अपराध किए थे, जिनके कारण हमारे हाथ काटे गए; क्योंकि भगवान के राज्य में कभी किसी निर्दोष को, निरपराध को दंड नहीं मिल सकता।

इस प्रकार विचार करते-करते उन्हें गहरी नींद आ गई। रात्रि में स्वप्न में भगवान ने सदन को बताया—''पुत्र सदन! तुम सचमुच निर्दोष, निश्छल व निष्कपट हो। तुम मेरे बहुत ही प्रिय हो। तुम पूर्वजन्म में एक विद्वान ब्राह्मण थे। एक दिन एक गाय कसाई के घेरे से भागकर तुम्हारी कुटिया के पास पहुँच गई। उधर कसाई ने तुम्हें पुकारा व उस गाय को पकड़ने को कहा। तुमने गाय के गले में दोनों हाथ डालकर उसे भागने से रोक लिया। उस कसाई ने गाय को ले जाकर काट दिया।

''भगवान सदन कसाई को समझाते हुए बोले—उसी गाय ने इस जन्म में उस स्त्री के रूप में जन्म लिया है, जिसने तुम पर लांछन लगाया है। गाय को काटने वाला कसाई ही उस स्त्री का पति है। सो पूर्वजन्म का बदला लेने के लिए ही उसने उसका गला काटा। तुमने उस गाय को दोनों हाथों से पकड़ा था, सो उस पाप के कारण ही तुम्हारे हाथ काटे गए और इस दंड से तुम्हारे पाप का भी नाश हो गया।''

इस प्रकार स्वप्न में सदन को कर्मफल-विधान के साथ-साथ ईश्वर की असीम अनुकंपा का परिचय हुआ। वे भगवान के प्रेम में भावविह्वल हो गए। वे नाचने लगे, गाने लगे। कहते हैं उन्होंने अपना शेष जीवन उसी पुण्य-क्षेत्र में व्यतीत करते हुए गुजारा व अंत में भगवान के परम धाम पधारे। ❑

संप्रदाय, मजहब, जाति, वर्ग एवं राष्ट्रीय दीवारों से निकलकर मानवीय सिद्धांतों एवं विश्वबंधुत्व को प्रोत्साहन देने वाली यहाँ की ज्ञानसंपदा ने प्रत्येक धर्म एवं मजहब के व्यक्तियों को प्रभावित किया है। औरंगजेब का भाई दाराशिकोह उपनिषदों के एक बार रसास्वादन के उपरांत उनकी मस्ती में इतना डूबा कि निरंतर छह माह तक काशी के पंडितों को बुलाकर उनकी व्याख्या सुनता रहा। दूसरों को भी उसका लाभ मिले—यह सोचकर उसने स्वयं फारसी में उपनिषदों का अनुवाद किया। दाराशिकोह के इस भाषांतर को फ्रेंच के विद्वान एन्क्विटिल ड्यूपैरो ने पढ़ा। उसकी रुचि इतनी बढ़ी कि सभी प्रमुख प्राच्यशास्त्रों, वेदों, उपनिषदों का अध्ययन कर डाला। फारसी अनुवाद के आधार पर उसने इनका लैटिन भाषा में अनुवाद किया। दाराशिकोह का फारसी अनुवाद एवं एन्क्विटिल का ईसाई अनुवाद अब भी मुसलिम एवं ईसाई जगत में अत्यंत श्रद्धा के साथ पढ़ा जाता है।

शक्तिरूपेण संस्थिता



विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव ने अप्रैल, 1974 में महिला जागरण अभियान की घोषणा की और बोले कि अगले दिनों दुनियाभर में महिलाएँ सभी क्षेत्रों में ज्यादा सक्रिय होती दिखाई देंगी। वे पुरुषों से कंधा मिलाकर उन्हें मात देते हुए आगे बढ़ेंगी। अब नारी शक्ति को उभरने से कोई रोक नहीं सकता। इस उद्बोधन के साथ उन्होंने गायत्री परिवार के महिला जागरण अभियान का पूरा खाका खींच दिया। उन्हीं दिनों दक्षिण भारत के करुणाकर आश्रम में साधनारत माँ मीरा को एक अलौकिक अनुभूति हुई, जिसमें उन्हें माँ भगवती की वाणी सुनाई पड़ी, जो उनसे बोली—''गंगा के तट पर देवियों के आवाहन का महान कार्य आरंभ होने जा रहा है। उस महान कार्य में स्वयं को लीन कर दो।'' ऐसा ही कुछ दिव्य अनुभव अगरतला के पास के एक कसबे में भी घटा। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.........

वैरागी की याद

करीब महीनेभर बाद साधकों को उस रहस्यमय संन्यासी की फिर याद आई। मंदिर में पीले वस्त्र पहने कुछ लोग साइकिलों पर आए थे। उन्होंने गाँववालों को बुलाया और गायत्री मंत्र, यज्ञ, मातृशक्ति आदि के बारे में बताया। तीन दिन के प्रवास में उन्होंने सत्संग चर्चा के अलावा गायत्री यज्ञ भी किया। साधकों को भगवती अर्चना के समय आए संन्यासी की याद इसलिए आई कि पीतवस्त्रधारी कार्यकर्त्ताओं ने मातृशक्ति के बारे में उन्हीं बातों की विस्तार से विवेचना की थी। यह भी कहा था कि गायत्री परिवार के संपर्क में आएँ और शांतिकुंज जाकर देखें। फिर विचार करें कि अपने परिवार की महिलाओं को वहाँ भेजने का इरादा बनता है या नहीं। हालात बनते दिखाई दें तो वहाँ जरूर भेजें, वरना आस-पास के गाँवों में इन बातों को पहुँचाएँ। कम-से-कम महिलाओं के लिए पढ़ने-लिखने की व्यवस्था तो करें ही। जैसी भी बन पड़े, शुरुआत तो करें। आगे का काम भगवान सँभालेंगे।

अक्टूबर, 1974 से शांतिकुंज में महिला शिक्षण शिविर शुरू हो गए। महीनेभर के इस सत्र में प्रारंभ में पचास महिलाएँ आईं। बाद में यह संख्या बढ़ने लगी। शिविर से पहले ही महिला जागरण की गतिविधियाँ चल पड़ी थीं। गुरुदेव ने गायत्री परिवार के पुरुष कार्यकर्त्ताओं से कहा कि पहल वे करें। घर-परिवार में कोई महिला इतनी शिक्षित और प्रभावशाली हो कि तीसरे पहर तीन घंटे का समय निकालकर महिला विद्यालय चला सके तो उसे तैयार किया जाए। तीसरे पहर इसलिए कि तब घर-गृहस्थी का काम कम होता है। परिवार में महिला जागरण के लिए समय निकालने वाली एक महिला निकल आए तो भी काफी है। किसी अन्य परिजन के यहाँ भी इस तरह की महिला तैयार हो सकती है। ऐसी दो-चार महिलाएँ इकट्ठी हों तो उस क्षेत्र में महिला जागरण अभियान शुरू हो सकता है। निर्देश था कि इस टोली का नाम महिला युग निर्माण शाखा रखा जा सकता है।

अप्रैल, 1974 में शांतिकुंज में चल रहे शिविर में गुरुदेव ने शिविरार्थियों को इस आरंभ के साथ आगे का उपक्रम भी समझाया। इन निर्देशों को पत्राचार द्वारा भी परिजनों तक पहुँचाया गया और अगले महीने मिशन की मासिक और पाक्षिक पत्रिकाओं के माध्यम से संदेश लगभग सभी परिजनों तक पहुँच चुका था। उसका परिणाम जून, 1974 में गायत्री जयंती तक दिखाई देने लगा। क्षेत्र में चार हजार महिला युग निर्माण शाखाओं की स्थापना हो गई। बाद में इस संगठन को महिला जाग्रति अभियान नाम दिया गया।

क्षेत्र में पहली समस्या प्रौढ़ महिला कक्षाओं के लिए छात्राएँ जुटाने में आई। बीस-पच्चीस परिवारों में घूमने पर कोई एक प्रौढ़ महिला पढ़ने के लिए तैयार होती। यद्यपि वे जानती थीं कि कुछ पढ़ने-लिखने योग्य सीख लेंगी तो इसमें लाभ ही होगा। लेकिन वर्षों की अभ्यस्तचर्या में आलस्य जड़ें जमाए हुए था। वह निकल नहीं पाता था। बात शुरू

करते ही वे पूछतीं कि पैंतीस-चालीस वर्ष की उम्र में पढ़-लिखकर क्या करना है? कोई नौकरी तो करना नहीं है।

इस तरह का सवाल करने या जवाब देने वाली महिलाओं को समझाना कठिन हो जाता कि शिक्षित या साक्षर होने के क्या लाभ हैं। वे मानने को तैयार ही नहीं होतीं कि सिर्फ पढ़ना-लिखना ही सीख लिया जाए, आगे नहीं सीखें तो भी व्यावहारिक जीवन में कदम-कदम पर फायदा है। बाहर निकलने पर अता-पता पूछने के लिए भटकने की जरूरत नहीं होगी। अपने स्वजन-संबंधियों को चिट्ठी लिखाने के लिए किसी की चिरौरी नहीं करना पड़ेगी। हिसाब-किताब स्वयं रख सकेंगी। दूसरों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा, घर-गृहस्थी के काम-काज से बचने वाला समय किताबें पढ़ने, अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ बाँचने या इनमें दिलचस्पी नहीं हुई तो गीता-रामायण के पाठ-प्रवचन में लगाया जा सकेगा। गपबाजी छूटेगी तो कई झंझटों से छुटकारा मिलेगा। अपने आस-पास अच्छा वातावरण बनाया जा सकेगा। इस तरह की तमाम बातें विस्तार से कहना-समझाना पड़तीं। इस सबके बावजूद बीस-पच्चीस घरों में एकाध जगह ही सफलता मिलती।

लेकिन परीक्षा या चुनौती यहीं तक सीमित नहीं थी। प्रौढ़ महिलाएँ तैयार हो जातीं तो घर में सास-ससुर आड़े आते। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता कि बहू घर की चौखट से बाहर जाए। राजस्थान में अजयगढ़ की कार्यकर्त्ता गौरी व्यास ने बताया है कि उन्हें प्रौढ़ महिलाओं के आलस्य और संकोच को तोड़ने में खास दिक्कत नहीं हुई। सास-ससुर की ओर से ज्यादा रुकावटें आईं। गाँव के प्रतिष्ठित पंडित विश्वनाथ शर्मा शास्त्रों और सामयिक विषयों में गहरी पैठ रखते थे, उन्होंने अपनी बहू को प्रौढ़शाला में भेजने से मना करते हुए विद्वत्तापूर्ण तर्क दिए। उन्होंने कहा—"शिक्षा का अर्थ अक्षर ज्ञान या किताब पढ़ना ही नहीं है। व्यक्ति का संस्कारवान और ग्रहणशील होना ही पर्याप्त है।"

गौरी ने कहा—"व्यक्तित्व के विकास में स्वाध्याय की उपयोगिता भी तो है। आप इससे सहमत नहीं हैं क्या?"

"पूरी तरह सहमत हूँ, लेकिन हम लोग जिस तरह के वातावरण में रहते हैं उसके अभ्यस्त हो चले हैं और उसमें सुखी-संतुष्ट हैं। अब उस व्यवस्था को तोड़कर बहुएँ बाहर जाएँगी तो असुविधा होगी।"—पंडित विश्वनाथ ने कहा, "और वे घर के भीतर रहकर ही स्वाध्याय कर रही हैं।"

गौरी ने फिर बात आगे बढ़ाई—"कुछ समय के लिए वे घर से बाहर निकलें, तो उनके गुणों का लाभ गाँव की दूसरी स्त्रियों को भी मिलेगा। वे महिलाएँ बहुओं से कुछ सीखेंगी।"

पंडित जी ने कहा—"जिन्हें सीखना है, वे हमारे घर आ जाएँ। यहीं बहुओं से सीखें।"

इस पर गौरी ने कहा—"किंतु महाराज जी, यह ट्यूशन पढ़ना नहीं है। हम लोग गायत्री परिवार के सिद्धांतों का प्रचार कर रहे हैं।" इस पर पंडित जी ने कहा—"गायत्री परिवार के बारे में मैं भी अच्छी तरह जानता हूँ। पूज्य आचार्य जी से भेंट भी हुई है। मैं उनके प्रति भक्तिभाव रखता हूँ, लेकिन क्या करूँ? अपनी कुल-मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता।"

गौरी और पंडित जी इस विषय पर करीब आधा घंटे तक चर्चा करते रहे। बातचीत में पता नहीं किन भावों ने पंडित जी का मन छुआ कि अचानक उन्होंने कहा— "अच्छा आप बहुओं के बाहर निकलने पर जोर न दें तो मैं एक व्यवस्था कर सकता हूँ।" गौरी ने उनके अगले वाक्य सुनने की उत्कंठा जताते हुए पंडित जी की ओर देखा। उन्होंने कहा—"अगर आप लोग चाहें तो प्रौढ़ कक्षाएँ हमारी हवेली में ही लगाएँ। मैं दो कमरे का इंतजाम कर सकता हूँ। आप लोग यहीं आ जाया करें।"

प्रस्ताव आकर्षक था। गौरी को लगा कि हमारा उद्देश्य महिलाओं में जाग्रति लाना है। वे घर में रहें या बाहर, क्या फरक पड़ता है? प्रौढ़शाला के लिए स्थान की व्यवस्था भी तो करनी होगी। व्यवस्था अपने आप हुई जा रही है। क्यों न इसे भगवान की भेजी हुई सहायता के रूप में स्वीकार किया जाए। वह इन विचारों में डूब-उतरा ही रही थी कि पंडित जी ने टोका—"प्रस्ताव पसंद नहीं आया? है न?"

"नहीं-नहीं। ऐसी बात नहीं है।" गौरी ने कहा—"दरअसल मैं कुछ और ही सोच रही थी। मैं सोचती हूँ कि इस बारे में मैं अकेले तो फैसला नहीं कर सकती। अपनी कार्यकर्त्ता बहनों से भी विचार करना होगा। मैं कल सुबह आपको बता दूँगी।"

उस दिन की चर्चा वहीं पूरी हो गई। शाम को अजयगढ़ की महिला कार्यकर्त्ताएँ जुटीं तो पंडित जी के प्रस्ताव की चर्चा हुई। थोड़े-बहुत मतांतर से सभी ने स्वीकार किया कि पंडित जी के प्रस्ताव को मान लेना चाहिए। उनकी बहुएँ

सामान्य स्कूली पढ़ाई तो किए हुए हैं ही। वे गायत्री परिवार के विचार और संस्कार ग्रहण करते हुए स्वयं भी नई महिलाओं को पढ़ाएँगी। दूसरे गाँव में पंडित जी की प्रतिष्ठा का लाभ भी मिलेगा। वहाँ पढ़ने जाने की बात पर महिलाएँ आसानी से तैयार हो जाएँगी।

पंडित जी की हवेली में महिलाशाला की कक्षाएँ शुरू होना एक सुखद उपलब्धि थी। शुरू में कठिन और चुनौतीपूर्ण लग रही स्थिति जिस तरह अनुकूलता में बदली, उससे कार्यकर्त्ताओं का हौसला बढ़ा। लेकिन इस तरह के अनुभव हर कहीं नहीं हुए। ज्यादातर जगह निरर्थक परिश्रम ही करना पड़ा। (क्रमशः)

स्वामी रामतीर्थ उन दिनों अमेरिका के दौरे पर थे। अनेक स्थानों पर गोष्ठियों तथा प्रवचनों का आयोजन हो रहा था। भारतीय संस्कृति के अमूल्य सिद्धांतों की व्याख्या से अमेरिका निवासी बड़े प्रभावित हो रहे थे। एक दिन स्वामी जी का प्रवचन समाप्त होने पर एक महिला आई और विषादयुक्त वाणी में अपने विचार व्यक्त करने लगी—"स्वामी जी! मेरे एक ही पुत्र था। थोड़े दिन पूर्व उसकी मृत्यु हो गई। मैं विधवा हूँ। किसी भी तरह चित्त को शांति नहीं मिलती। जीवन में निराशा-ही-निराशा दिखाई देती है। आप कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे मेरे जीवन को शांति मिल सके।" स्वामी जी ने कहा—"आपको शांति की पुनः प्राप्ति हो सकती है और अपने जीवन में आनंद का अनुभव कर सकती हैं, पर हर वस्तु का मूल्य चुकाना पड़ता है। क्या आप सुख-शांति की पुनः प्राप्ति हेतु कुछ त्याग करने को तैयार हैं?"

महिला ने कहा—"बस, आपके आदेश देने की देर है। मैं अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार हूँ।" इस पर स्वामी जी ने कहा—"पर इतना ध्यान रखना कि आपके देशवासी भौतिक वस्तुओं पर अधिक ध्यान देते हैं। यहाँ डालर और सेंट के त्याग से काम नहीं चलेगा। यदि आप सचमुच तैयार हैं तो मैं कल स्वयं ही आपके निवास स्थान पर उपस्थित होऊँगा।" दूसरे दिन स्वामी रामतीर्थ एक हब्शी बालक को अपने साथ लेकर उस महिला के घर पहुँचे। घंटी बजाई, दरवाजा खुला और वह महिला सामने आ खड़ी हुई और कहा—"स्वामी जी! आपने बड़ी कृपा की, जो मेरे घर पधारे।" स्वामी जी ने कहा—"माता! यह रहा तुम्हारा पुत्र। अब इसके सुख-दुःख का ध्यान रखना और पालन-पोषण करना तुम्हारे ऊपर निर्भर करता है।" उस काले लड़के को देखकर वह महिला सिहर उठी—"स्वामी जी! यह हब्शी बालक मेरे घर में प्रवेश कैसे कर सकता है? गोरी माँ काले लड़के को अपना पुत्र कैसे बना सकती है?" स्वामी जी ने कहा—"माँ! सच्चे सुख और शांति को प्राप्त करने का मार्ग यही है। आप बिना किसी भेदभाव के सभी को अपना समझो तो सर्वत्र आनंद बिखरा हुआ मिलेगा।"

महिलाओं की बढ़ती वैश्विक भूमिका

देश में महिलाओं की भागीदारी केवल पारिवारिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक व आर्थिक स्तर पर भी लाभकारी है, इस बात का प्रमाण दे रहे हैं—आधुनिक नवीनतम शोध। हालाँकि सदियों से महिलाओं को घर की चहारदीवारी में रहने के लिए प्रेरित व विवश किया गया, उनकी क्षमताओं को सीमित किया गया, लेकिन इसके बावजूद जब उन्हें किसी क्षेत्र विशेष में आगे बढ़ने का मौका दिया गया, तब उन्होंने स्वयं अपने आप को प्रमाणित किया। आज दुनिया में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जिसमें महिलाएँ आगे न बढ़ी हों और उसमें अपनी क्षमता का प्रदर्शन न किया हो। इसलिए आज की जरूरत है—महिला सशक्तीकरण, ताकि हमारा देश केवल आधी-अधूरी प्रगति न करे, बल्कि दूनी रफ्तार से आगे बढ़ सके।

शोध रिपोर्टों से पता चलता है कि समान अवसर मिलने पर महिलाओं ने लोगों को ही नहीं, अपितु राष्ट्रों को भी बदल दिया; क्योंकि महिलाएँ विभिन्न मुद्दों पर नया दृष्टिकोण लाती हैं और साहसिक निर्णय लेती हैं। पीटरसन इन्स्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल इकोनॉमिक्स के अध्ययन के अनुसार—जिन कंपनियों में शीर्ष स्तर पर महिलाएँ होती हैं, वे ज्यादा मुनाफा कमाती हैं। इस बारे में वैश्विक स्तर पर व्यापार करने वाली 91 देशों की 21,000 कंपनियों के विश्लेषण से पता चलता है कि जिन संस्थाओं में नेतृत्व की स्थिति में कम-से-कम 30 फीसदी महिलाएँ हैं, उन्होंने मुनाफे में छह फीसदी वृद्धि दर्ज की।

दरअसल शीर्ष पायदान पर रहने वाली महिलाओं में नेतृत्व की परिवर्तनकारी शैली होती है; क्योंकि वे परिश्रमी, बहुमुखी, बिना भेदभाव के निर्णय लेने वाली और काम के प्रति समग्र दृष्टिकोण रखती हैं। वैश्विक लिंग अंतर सूचकांक सन् 2018 के अनुसार—ऐसे केवल 17 देश हैं, जिनकी राष्ट्राध्यक्ष महिलाएँ हैं; जबकि विश्व स्तर पर औसतन 18 फीसदी मंत्री और वैश्विक स्तर पर 24 फीसदी सांसद महिलाएँ हैं।

अध्ययनों से यह पता चलता है कि जिन फॉर्च्यून 500 कंपनियों के शीर्ष पदों पर महिलाओं की संख्या अधिक है, उन कंपनियों में बिक्री, इक्विटी और निवेश पर रिटर्न का प्रदर्शन औसत से बेहतर रहा है। इस तरह ये कंपनियाँ अन्य की तुलना में ज्यादा मुनाफा कमा रही हैं।

आईएमएफ (अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष) का कहना है कि यदि श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी को पुरुषों के समान स्तर तक बढ़ाया जाता है तो भारत की जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) 27 फीसदी तक बढ़ सकती है। वास्तव में सचाई यह है कि भारतीय कंपनियों के शीर्ष पदों पर महिलाओं की संख्या बहुत ही कम है। इसका कारण उनकी क्षमता में कमी नहीं, बल्कि महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह की भावना है; क्योंकि कई सदियों से हमारे समाज में पितृसत्तात्मक सोच और गलत धारणाएँ सभी क्षेत्रों में महिलाओं की प्रगति को बाधित करती रही हैं।

अब महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि रोजगार में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाकर कोई भी देश अपनी जीडीपी में सुधार कर सकता है। भले ही इस तथ्य पर कोई भरोसा न करे, लेकिन आँकड़े इस बात को प्रमाणित करते हैं कि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था और महिला कार्यबल का आपस में सीधा संबंध है।

भले ही कार्यस्थल व अन्य क्षेत्रों में महिलाओं को वेतन या अवसरों के मामले में उचित भागीदारी नहीं दी जा रही है, फिर भी आज कॉरपोरेट में शीर्ष पदों पर मामूली संख्या में ही महिलाओं को मौका दिया जा रहा है। महिलाओं के खिलाफ यह अनुचित व्यवहार अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुँचा रहा है। ऐसे में कॉरपोरेट में महिलाओं के साथ भेदभाव को दूर करना समय की जरूरत है। इस पहल से कॉरपोरेट जगत में उत्साह, नई सोच, बेहतर निर्णय लेने और नवाचार का माहौल पैदा होगा।

जेनर फाकमैन के अध्ययन के अनुसार—दक्षता के मामले में महिलाओं का स्कोर पुरुषों के 12 की तुलना में 16 होता है। इसका कारण है कि आत्मीयता, आत्मविकास,

अखंडता, ईमानदारी, सहानुभूति और सहज स्वभाव जैसे गुण महिलाओं को शक्तिशाली नेतृत्वकर्त्ता बनाते हैं, जिसका लाभ उनसे जुड़े हुए लोगों को मिलता है। ऐसे में व्यवसाय और अन्य क्षेत्रों में नेतृत्व कर रही महिलाओं के योगदान को समझने की जरूरत है।

अब कई शोध रिपोर्ट इस बात की पुष्टि कर रहे हैं कि महिलाएँ नेतृत्व-क्षमता और कार्य-संपादन में पुरुषों की तुलना में ज्यादा निपुण होती हैं। इसके बावजूद कॉरपोरेट जगत में शीर्ष पदों पर महिलाओं को पर्याप्त अवसर नहीं दिए जा रहे हैं। यदि देश की आधी आबादी को भी पुरुषों के समान बराबरी का दरजा दिया जाए तो कंपनियों के कारोबार में आशातीत वृद्धि हो सकती है; क्योंकि यह मात्र कल्पना नहीं है, बल्कि शोध रिपोर्टों का दावा है।

हाल ही में जारी की गई मैकिंसे ग्लोबल इन्स्टीट्यूट की शोध रिपोर्ट यह बताती है कि यदि महिलाओं को कार्यस्थल पर समान भागीदारी मिले तो सन् 2025 तक वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 12 खरब डॉलर की वृद्धि हो सकती है। यह आँकड़ा भारत की मौजूदा अर्थव्यवस्था की तुलना में चार गुना से भी ज्यादा है। इस बारे में संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट कहती है कि महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण से उत्पादकता बढ़ती है, आर्थिक विविधता बढ़ती है और आय में समानता आती है। इसके बावजूद कार्यस्थल में आज महिलाओं की भागीदारी अत्यंत कम है।

यदि हमें अपने समाज में खुशहाली लानी है तो हमें महिलाओं की अभूतपूर्व क्षमता का उपयोग करना होगा, इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करना होगा। महिलाओं में इतनी क्षमता होती है कि वे बड़ी-से-बड़ी सांस्कृतिक और संरचनात्मक बाधाओं को तोड़ सकती हैं। देश की समृद्धि के लिए हमें शक्तिशाली और रणनीतिक नेताओं की जरूरत है, जो लोगों को सही दिशा की ओर ले जा सकें। इस मामले में महिलाएँ बेहतर विकल्प हैं। यदि उन्हें मौका दिया जाए, तो निश्चित रूप से वे अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन करेंगी और समाज में एक नई धारणा का विकास करेंगी। ❑

पेंसिलवेनिया में जन्मी एडिथ सेंपसन उस अश्वेत परिवार में जन्मी थीं, जिन्हें अस्पृश्यों से भी गई-गुजरी स्थिति में रहना और आएदिन गोरों का त्रास सहना पड़ता था। उन्होंने अध्ययनकाल में अपनी रुचि और एकाग्रता नियोजित की, फलतः वे एक सफल वकील बन सकीं। इसके बाद उन्हें शिकागो हाईकोर्ट का जज बनाया गया। उस अदालत में छोटे अपराधों के अनेक मुकदमे आते थे, वे सभी निपटा देती थीं।

उनके हँसने-हँसाने की आदत और न्याय की पृष्ठभूमि समझाने पर अधिकांश अपराधी स्वयं ही अपराध स्वीकार कर लेते और उचित दंड स्वेच्छापूर्वक सहते। गरीबों का समय अदालत का चक्कर काटने में नष्ट न हो, इसलिए वे प्रायः दो मिनट के औसत से मुकदमा निपटाती थीं। वकील करने की भी अधिकांश को जरूरत न पड़ती। वे जज की नहीं, परिवार की बुजुर्ग की भूमिका निभाती थीं।

प्रेसीडेंट ट्रूमैन ने उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिका का प्रतिनिधि बनाकर भेजा। उच्च पद पर रहते हुए उन्होंने अपने पिछड़े समुदाय को ऊँचा उठाने के लिए अनेक रचनात्मक कार्य किए।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार– 130

साहसिक पर्यटन पर साहसिक शोध



पर्यटन की एक विशेष शाखा है—साहसिक पर्यटन। इस पर्यटन में एक पर्यटक आत्मविश्वास के साथ समय एवं स्थान के अनुरूप विभिन्न प्रकार की चुनौतियों को स्वीकार करता है, जिनका सीधा संबंध उसकी शारीरिक, मानसिक एवं आंतरिक क्षमताओं से होता है। साहसिक पर्यटन में पर्यटक का उद्देश्य मात्र चुनौतियों को चुनकर या उनमें भाग लेकर उन्हें पार करना ही नहीं, वरन अपने अंदर उन गुणों का विकास करना होता है; जिनसे पर्यटक के व्यक्तित्व में पहले की अपेक्षा सकारात्मक अंतर स्पष्ट दिखाई दे। ऐसे सकारात्मक अंतर को देखने एवं मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक शोधों के माध्यम से उजागर करने का कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय में किया जा रहा है। इस क्रम में पर्यटन प्रबंधन केंद्र के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

यह शोधकार्य सन् 2017 में शोधार्थी अवनेंदु पाराशर पांडेय द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ० अरुणेश पाराशर के निर्देशन तथा डॉ० संतोष विश्वकर्मा के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध-अध्ययन का विषय था—'**साहसिक पर्यटकों के व्यक्तित्व शीलगुण की व्याख्या एवं साहसिक पर्यटन का साहसिक पर्यटकों के आत्मविश्वास स्तर पर पड़ने वाला प्रभाव—ऋषिकेश में वाटर राफ्टिंग के विशेष संदर्भ में।**' इस अध्ययन को शोधार्थी ने दो भागों में विभाजित कर पूर्ण किया है। प्रथम भाग में साहसिक पर्यटकों के विभिन्न व्यक्तित्व शीलगुणों का अध्ययन किया है, तथा द्वितीय भाग में वाटर राफ्टिंग से आत्मविश्वास स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया है। अपने इस प्रयोगात्मक अध्ययन में शोधार्थी ने 15 से 47 वर्ष के बीच के 200 लोगों का चयन किया, जिसमें व्यक्तित्व शीलगुण अध्ययन हेतु साहसिक पर्यटक के रूप में 100 लोगों को उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि द्वारा चयनित किया गया तथा साहसिक पर्यटन के आत्मविश्वास मापन हेतु 100 लोगों को आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयनित किया गया।

शोधार्थी द्वारा दो शोध उपकरणों का प्रयोग किया गया। एक आर० बी० कैटल द्वारा निर्मित 16 पी० एफ० व्यक्तित्व शीलगुण मापनी तथा दूसरा अग्निहोत्री द्वारा निर्मित सेल्फ कॉन्फिडेंस इन्वेन्टरी। अपने इस प्रयोगात्मक अध्ययन में आँकड़े संग्रहण के लिए शोधार्थी ने उत्तराखंड राज्य में ऋषिकेश क्षेत्र के अंतर्गत होने वाली विभिन्न साहसिक पर्यटन की गतिविधियों का सर्वेक्षण किया एवं साहसिक पर्यटनकेंद्रों पर आने वाले पर्यटकों की संख्या को संकलित किया। इसके उपरांत पर्यटकों की गतिविधियों को साहसिक गतिविधि के अनुसार श्रेणी में विभाजित किया।

साहसिक पर्यटन हेतु विभिन्न केंद्रों से ऐसे केंद्रों का चुनाव किया, जहाँ प्रतिदिन 40 से 50 साहसिक पर्यटक उपलब्ध रहते हैं। शोधकर्त्ता ने 16 पी० एफ० प्रश्नावली के आँकड़ा संग्रहण हेतु मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त किया एवं विभिन्न पर्यटनकेंद्रों में जाकर प्रातः से सायं तक 100 पुरुषों का जो कि 15 वर्ष से 47 वर्ष के मध्य थे, उनसे 16 पी० एफ० प्रश्नावली को पूर्ण कराया एवं स्वयं शोधार्थी ने प्रत्येक प्रश्नावली का फलांकन निश्चित मानदंडों के अनुरूप पूर्ण किया।

अध्ययन के द्वितीय चरण को पूरा करने के लिए शोधार्थी ने गढ़वाल मंडल विकास निगम, उत्तराखंड द्वारा संचालित तीन दिवसीय वाटर राफ्टिंग कार्यक्रम केंद्र का चयन किया। उक्त केंद्र पर ऐसे पर्यटक भाग लेते हैं, जिन्होंने पूर्व में राफ्टिंग का अभ्यास न किया हो। यह उत्तराखंड सरकार द्वारा संचालित ऐसा केंद्र है, जो वाटर राफ्टिंग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार के शैक्षणिक संस्थानों के विद्यार्थी एवं आचार्यों में वाटर राफ्टिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने और उसके महत्त्व को समझाने के लिए विशेष शिविरों का आयोजन निरंतर करता रहता है। शोधकर्त्ता ने इन शिविरों में पहली बार राफ्टिंग करने वाले 100 लोगों से आत्मविश्वास मापनी पूर्ण कराई।

परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि साहसिक पर्यटन से नया अनुभव,

स्फूर्ति, समझ और प्रेरणा प्राप्त होती है तथा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही वह आनंदमय, प्रशांत और निराशाविहीन हो जाता है।

शोध परिणाम में शोधार्थी ने यह भी पाया कि वाटर राफ्टिंग का अभ्यास करने से आत्मविश्वास के स्तर में सकारात्मक वृद्धि होती है। वाटर राफ्टिंग साहसिक पर्यटन का वह घटक है, जो कि साहसिक खेल के अंतर्गत आता है। इस खेल में पर्यटक अपने शरीर और मन की सामर्थ्य शक्ति का पूर्ण रूप से अनुभव करता है। वह इस गतिविधि के समय विभिन्न प्रकार की रोमांच उत्पन्न करने वाली गतिविधियों का सामना करता है, जो उसके मानसिक और शारीरिक आयामों को नवीनता प्रदान करने वाली होती हैं। इसके साथ ही साहसिक पर्यटक विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक घटकों (जल, पहाड़, वन, मछली, कीट, जंगली जानवर आदि) के संदर्भ में वास्तविक अनुभवों को ग्रहण करता है।

वाटर राफ्टिंग करने वाले पर्यटक विभिन्न अनुभवों को ग्रहण कर अपने पूर्व अनुभवों से बाहर निकलते हैं। वे वाटर राफ्टिंग गतिविधि के उपरांत स्वयं को पहले से अधिक शारीरिक और मानसिक रूप से सामर्थ्यवान, शक्तिशाली, आत्मविश्वासी और जागरूक अनुभव करते हैं। वाटर राफ्टिंग साहसिक पर्यटन के अंतर्गत आने वाली एक ऐसी गतिविधि है, जो मनोरंजन के साथ-साथ व्यक्ति के शीलगुणों अर्थात पूर्वनिर्धारित व्यक्तित्व के आयामों को प्रभावित करने में सक्षम होती है। यह व्यक्ति के जीवन को एक नवीन आयाम का अनुभव प्रदान करने वाली साहसिक गतिविधि है, जो कि व्यक्तित्व के उन गुणों को विकसित करने में सहायक है, जो उसे सकारात्मक दिशा में लेकर जाते हैं।

इस शोध में शोधार्थी ने साहसिक पर्यटन के सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्त्व को भी रेखांकित किया है। इस अध्ययन के माध्यम से शोधार्थी की यह भी मान्यता है कि भारत के भू-भाग में साहसिक पर्यटन की असीमित संभावनाएँ मौजूद हैं, मात्र आवश्यकता है ऐसे स्थलों को चिह्नित करने एवं वैश्विक स्तर पर उन्हें विकसित बनाने की। शोधकार्य के दौरान शोधार्थी ने साहसिक पर्यटन के क्षेत्र में उभरती समस्याओं को भी रेखांकित करते हुए उनका विवेचन अपने इस शोध प्रबंध में किया है।

इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने निम्न सुझाव प्रस्तुत किए हैं—(1) साहसिक पर्यटनस्थलों पर सरकार द्वारा स्थान-स्थान पर कूड़ेदान की समुचित व्यवस्था एवं पर्यटकों के लिए आवश्यक निर्देश और अवहेलना पर दंड का प्रावधान होना चाहिए। (2) नशीले पदार्थों के सेवन के उपरांत साहसिक खेलों में भागीदारी पूर्णतः वर्जित रखनी चाहिए, (3) भारत में साहसिक पर्यटन करने वाले पर्यटकों के आँकड़े नियोजित ढंग से उपलब्ध नहीं हैं। इस क्षेत्र की भावी संभावनाओं को देखते हुए इनकी समुचित व्यवस्था बनवानी चाहिए। ❑

बात उन दिनों की है, जब कौशल नरेश बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाना चाहते थे। उन्होंने मुख्य श्रमण से पूछा—''संघं शरणं गच्छामि, के अनुसार बुद्ध मतानुयायी को बौद्ध विहारों में भिक्षु संघ के साथ रहना होगा क्या ?'' प्रधान भिक्षु ने कहा—''राजन्! संघ शब्द केवल भिक्षु संघ तक सीमित नहीं। यह तो सामाजिकता का पर्याय है। व्यक्ति कितना भी विद्वान और कितना भी धर्मपरायण हो, पर यदि समाजनिष्ठ नहीं हो तो वह समस्या पैदा करने वाला ही बन जाता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज को लक्ष्य करके आचरण और मर्यादाओं का निर्धारण करना आना ही चाहिए। सामूहिकता, संगठन, संघबद्धता की अनिवार्यता यह सूत्र बतलाता है।''

हमें नदियों को बचाना ही होगा



कल-कल छल-छल बहती हुई नदियाँ बरबस ही मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं और मन को प्रसन्नता से भर देती हैं। निर्मल व स्वच्छ जल उनके बहाव के कारण ही होता है, लेकिन आज नदियों की हालत अत्यंत दयनीय है, उनमें वो बहाव व स्वच्छ जल नहीं है, जो पहले था। यही कारण है आज हमारे समाज में नदियों की खूबसूरती धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है।

नद्यै च पुराणमम् च वर्तमाने च भविष्यते— अर्थात नदी हमारा इतिहास है, वर्तमान है और भविष्य भी हमारा नदियों से है। निश्चित रूप से नदियों से हमारा इतिहास, वर्तमान व भविष्य तीनों जुड़े हैं। नदियाँ साक्षी रही हैं हमारे इतिहास की। देश-दुनिया की शुरुआती सभ्यता नदियों से ही जुड़े हैं और अनेक सभ्यताएँ इन्हीं नदियों के आँचल में पुष्पित-पल्लवित हुई हैं। बाद में इन्हीं नदियों से नहरें खींचकर हमने शहरी सभ्यता को जन्म दिया, परंतु प्राचीनकाल में नदियों से ही देश की समृद्धि व उन्नति तय की जाती थी।

नदियों ने जहाँ हमारे समाज व राष्ट्र में धर्म-संस्कृति और साहित्य को जन्म दिया, वहीं ये आदिकाल से आर्थिकी का भी आधार रही हैं। इनसे ही अर्थ उत्पन्न हुआ, जिसका कालांतर में कई रूपों में उपयोग किया गया। इस तरह नदियाँ हमारी विरासत हैं, इनसे हमारी विचारशैली, जीवनशैली व जीवन-विज्ञान जुड़ा हुआ है और यही कारण है कि आदिकाल से हमारे देश में नदियों का पूजन व सम्मान किया जाता रहा है, उन्हें माता कहकर पुकारा गया है; क्योंकि ये माँ की तरह ही हमारा पालन-पोषण करती हैं, हमें जीवन प्रदान करती हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति में कई व्रत, पर्व व महोत्सव नदियों से जुड़े हुए हैं, जिनमें मुख्य रूप से छठ पर्व, कुंभ स्नान, गंगा दशहरा, पितृपक्ष श्राद्ध, विशेष तिथियों में जल का पूजन व स्नान आदि हैं। शास्त्रों के अनुसार—मृत्यु के बाद जीवात्मा की मुक्ति के रास्ते नदियों से ही होकर गुजरते हैं, इसलिए मनुष्य के अंतिम अवशेष नदियों में ही प्रवाहित किए जाते हैं।

वर्तमान युग में भी जीवन-विकास की नई शैली में सिंचाई के बाँध व जल-ऊर्जा का स्रोत नदियों से ही जुड़ा है। मत्स्यपालन, जलक्रीडा व नौकायन सभी इसी का हिस्सा हैं, परंतु पिछली सदियों की तुलना में आज नदियों के प्रति हमारी सोच में बहुत अंतर आया है। पहले नदियों का मात्र उपयोग ही नहीं किया जाता था, बल्कि उनका संरक्षण भी हमारे दायित्वों का हिस्सा होता था; जबकि वर्तमान की नई भोगवादी सभ्यता ने नदियों का मात्र उपयोग ही किया है, उनका अधिक-से-अधिक दोहन किया है और उनके संरक्षण का ध्यान ही नहीं रखा। नदियों के संरक्षण के प्रति की गई इस उदासीनता ने ही एक-एक करके सारी नदियों की दुर्दशा कर दी। आज नदियों में जल की वो स्वच्छ धारा नहीं है, जो अपने तीव्र वेग से निरंतर बहती रहती थी, नदियों में निरंतर बढ़ते रेत-बजरी के खनन ने इन पर चौतरफा मार किया है और यही कारण है कि आज नदियों ने अपना अस्तित्व ही खोना शुरू कर दिया है।

वर्तमान में हिमखंडों से पोषित नदियाँ फिर भी कुछ जीवित प्रतीत होती हैं, परंतु वर्षाजनित नदियाँ आज बड़े संकट में आ चुकी हैं। इसका मूल कारण उनके जलागमों के समीप वृक्षहीनता है। इसके कारण नदियों के जलस्तर में अप्रत्याशित कमी आ चुकी है। इसके अलावा देश की नदियाँ कचरों से भरी पड़ी हैं। पहले उनमें पर्याप्त पानी का बहाव होता था, तो वो कचरा भी ढो लेती थीं, परंतु अब जलस्तर में कमी व जल-प्रवाह के अभाव में वे कूड़े का अंबार दिखाई देती हैं और यह बात मन को बहुत विचलित करती है।

एक तरफ शास्त्रों ने जहाँ नदियों से हमारा भूत-वर्तमान व भविष्य तय किया था, वहीं आज देश की नई सभ्यता ने इन्हें किसी काल के योग्य भी नहीं रखा। हमारी पुरानी पीढ़ियों ने हमें नदियों के रूप में जो अनूठी विरासत व सभ्यता दी, उसे न तो हम सँभाल पाए और न ही उसे

सँवार कर अगली पीढ़ी को सौंप पाए, बल्कि उसका अस्तित्व ही आज गंभीर खतरे के निशान पर है।

इस तरह जिन नदियों से हम मोक्ष की कामना करते थे, आज उन्हीं नदियों को हमारी भोगवादी सभ्यता ने लीलना शुरू कर दिया है और इससे अपने सामूहिक विनाश के रास्ते खोल दिए हैं।

नदियों का वर्तमान सच केवल हमारे देश तक ही सीमित नहीं है, बल्कि नई भोगवादी सभ्यता ने दुनिया की सारी नदियों के अस्तित्व पर संकट खड़ा कर दिया है, इससे कई नदियों का अस्तित्व समाप्त हो गया है, कई मरणासन्न हैं और कई नदियाँ अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही हैं। वर्तमान में विश्व की सुप्रसिद्ध नदियों का जीवन खतरे में है, जैसे—चीन की येलो नदी, ऑस्ट्रेलिया की किंग नदी, आइसलैंड की टाऊ नदी, अमेरिका की मिसिसिपी नदी आदि। इन नदियों पर गहराते हुए संकट का सबसे बड़ा कारण है—वर्षा के पानी को इनके जलागमों द्वारा नियंत्रित रूप से सोख न पाने का अभाव। यानी ये नदियाँ या तो आज बाढ़ पैदा करती हैं और घर-गाँव डुबो देती हैं या फिर गरमियों में जल के अभाव में सूखे की मार पैदा करती हैं।

यदि हमें नदियों को पुनर्जीवित करना है, तो इनके जलागमों को समृद्ध करना होगा। एक अच्छे जलागम की परिभाषा उसके अच्छे वनाच्छादन से जुड़ी है और आज सारी दुनिया में जलागमों के हालात वनविहीनता की ओर बढ़ रहे हैं। यही कारण है कि वर्षा ऋतु में जलागमों में बढ़ता पानी तत्काल बाढ़ पैदा कर देता है व अशोषित होने की स्थिति में गरमियों के मौसम में सूखा ले आता है। यदि हमें अपनी नदियों को बचाना है तो इनसे जुड़े हुए जलागमों पर चिंता जतानी होगी, इन जलागमों की जल-अवशोषण की क्षमता बढ़ानी होगी, चाहे वो प्रकृति के बाँधों के माध्यम से हो या प्राकृतिक बाँधों से। जब तक हमारे जलागमों में वर्षा के पानी को रोकने की क्षमता नहीं बढ़ेगी, हम बाढ़ और सूखे को झेलते ही रहेंगे और नदियों की वर्तमान दशा को नहीं सुधार पाएँगे।

वर्तमान में इस दिशा में भी कुछ अनूठे प्रयास किए गए हैं, जिनमें जलागमों में पानी रोकने की क्षमताओं को कृत्रिम रूप से बढ़ाया है। जैसे—सन् 2010 में शुक्लापुर गाँव की नदी 'आसन गंगा' अपना अस्तित्व खोने के कगार पर पहुँच चुकी थी। यह नदी आगे जाकर यमुना नदी में विलीन होती है। इस नदी के जलागम अपने जल-संग्रहण की क्षमताओं को खो चुके थे और यही कारण था कि बरसात में यह नदी अपने उफान पर रहती थी और वर्ष के अन्य महीनों में सूखा झेलती थी।

सन् 2010 में उत्तराखंड वन विभाग व स्थानीय निवासियों ने मिलकर एक अनूठी योजना तैयार की, इसमें तय किया गया कि वृक्षारोपण के साथ-साथ जल रोपण का कार्य भी हो और इसके लिए जलागमों में जलछिद्रों का निर्माण किया जाए, ताकि वर्षा की सभी बूँदों को जलागम में ही समेट लिया जाए। इसके साथ ही जलागमों की सभी गलियों में चैकडैम के माध्यम से पानी को रोकने की व्यवस्था की गई। इससे वर्षा का पानी भूमि को तो सिंचित करता ही है, साथ ही यह अंततः भूमिगत होकर नदी में पहुँचता है।

प्रसीदत्यपरिस्यन्दि पयः कलुषितं यथा।
तथा शान्तमपि स्वान्तं प्रसीदति शनैः शनैः॥

अर्थात—जैसे मैला जल स्थिर रहने से धीरे-धीरे साफ होता है, वैसे ही शांत चित्त धीरे-धीरे प्रसन्न होता है।

इस योजना में करीब 44 हैक्टेयर भूमि में वृक्षारोपण कार्यक्रम को भी सम्मिलित किया गया। और इसका परिणाम यह निकला कि जहाँ सन् 2010 में नदी में 109 लीटर/मिनट पानी था, वहाँ आज जल का स्तर 900 लीटर/मिनट हो चुका है। इस तरह यहाँ पर नदी की सम्मानजनक वापसी हुई है और इससे जुड़े हुए 18 गाँवों के पानी का स्तर भी बढ़ा है।

इस तरह नदियों को यदि बचाना है, तो उनसे जुड़े जलागमों की समृद्धि का ध्यान रखना होगा, नदियों के आस-पास वृक्षारोपण करना होगा। नदियों को प्रदूषणमुक्त करना होगा, उनमें होने वाले लगातार खनन को रोकना होगा, तभी नदियाँ फिर से अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकेंगी। □

बातचीत भी एक कला है



बोलना तो हम बचपन में ही सीख लेते हैं, लेकिन हमें कब क्या बोलना चाहिए, यह सीखने में हमारी उम्र बीत जाती है। मुँह से बोले गए शब्द और बातचीत करने का तरीका हमारे जीवन में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह बनते हुए काम को बिगाड़ भी सकता है और बिगड़ते हुए काम को बना भी सकता है। इस संदर्भ में एक छोटी-सी कहानी है।

एक गाँव में दो महिलाएँ रहती थीं—कुशा और दक्षा। दक्षा, कुशा से ईर्ष्या करती थी और हमेशा यह सोचा करती थी कि वह कुशा से ज्यादा सफल होकर दिखाएगी। एक बार कुशा ने अचार और शहद की एक दुकान खोल ली। यह देखकर दक्षा ने भी अचार और शहद की दुकान खोल ली। कुशा की वाणी शहद-सी मीठी थी; जबकि दक्षा की वाणी कठोर थी।

एक दिन दक्षा की दुकान पर एक ग्राहक आया और वह एक-एक करके सारी चीजें चखने लगा। दक्षा को उस पर गुस्सा आ रहा था। तभी ग्राहक ने कहा—" क्या यह शहद असली है ?" ग्राहक का इतना कहना ही था कि दक्षा उस पर भड़क उठी और बोली—"जो खुद नकली होता है, वही दूसरों की चीजों को नकली बताता है।" इस पर ग्राहक गुस्सा होकर दुकान से बिना कुछ लिए ही निकल गया।

वह गुस्से में घर वापस लौट रहा था कि उसे कुशा की दुकान दिखी। कुशा ने पूछा—"अरे भैया! इतने गुस्से में कहाँ जा रहे हो ?" ग्राहक कुशा का आदर-भाव देखकर रुक गया। उसने जब कुशा की दुकान का शहद देखा, तो उससे भी वही सवाल किया—"क्या यह शहद असली है ?" कुशा बोली—"यह निश्चित रूप से असली है। आप इसे उपयोग करके देखिए, सही न लगे तो वापस लौटा दीजिएगा।" ग्राहक खुश होकर उसकी दुकान से अनेकों सामान ले गया।

इस तरह हमारे बातचीत करने का तरीका ही हमारे व्यक्तित्व को दरसाता है और हमारे प्रति लोगों के व्यवहार को भी निर्धारित करता है। कभी-कभी हम आवेश में ऐसी बातें कह जाते हैं, जिसका खामियाजा हमें जिंदगीभर भुगतना पड़ता है। इसलिए हमें सोच-समझकर ही बोलना चाहिए। हमारे द्वारा बोले गए कटु शब्द जहाँ दूसरों के मन में चुभते हैं, तो वहीं बोले जाने वाले मीठे शब्द उनके मन के घावों को सहलाते हैं, उन पर मलहम लगाते हैं। हमारी वाणी में यदि उत्साह है, तो वह संपर्क में आने वालों के अंदर नव-ऊर्जा का संचार पैदा करती है, उन्हें उत्साह-उमंग से भर देती है और वहीं वाणी में यदि निराशा है तो संपर्क में आने वालों को हतोत्साहित करती है।

वाणी हमारे दूसरों से संपर्क करने का एक माध्यम है, हम अपनी बोलचाल से ही दूसरों से संपर्क साधने का प्रयास करते हैं। जिस तरह बिजली के दो तारों के आपस में जुड़ने पर यदि चिनगारियाँ निकलती हैं, तो वे आपस में देर तक जुड़ नहीं सकते, बल्कि जल सकते हैं और यह खतरनाक स्थिति होती है और ऐसे तारों को कभी खुला नहीं छोड़ा जाता है; क्योंकि संपर्क में आने वालों को इससे नुकसान हो सकता है।

इसी तरह से यदि दो लोग आपस में बात-बात में यदि लड़ते-झगड़ते हैं, एकदूसरे को ताना देते रहते हैं, बात-बात पर गुस्सा करते रहते हैं, तो यह दो तारों के संपर्क में आने पर चिनगारी निकलने के समान ही है, जिसका परिणाम खतरनाक हो सकता है। इसलिए यदि गुस्सा या नाराजगी भी है, तो सार्वजनिक रूप से उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए, बल्कि अपनी नाराजगी को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

जीवन में ऐसे कई क्षण आते हैं, जो हमें कुछ-न-कुछ सीख देकर जाते हैं। हम अपनी बोलचाल से जहाँ दूसरों के मन पर छा जाते हैं, तो वहीं अपनी बोलचाल से किन्हीं लोगों के मन पर घाव भी कर देते हैं और ज्यादातर हम बातचीत से उन्हीं लोगों के दिलों को दुखाते हैं, जो हमारे सबसे अपने होते हैं और ऐसा होने पर हमारे रिश्तों में कड़ुआहट घुलने लगती है। फिर छोटी-छोटी बातें ही

बिगड़कर इतनी बड़ी बन जाती हैं कि उनके कारण लड़ाइयाँ हो जाती हैं या फिर नाराजगी हो जाती है, बातचीत तक बंद हो जाती है।

जब भी हम किसी से अपना काम निकलवाना चाहते हैं, तो उससे बड़े ही प्रेम से मिलते हैं, बहुत अच्छे से बात करते हैं, अपना अच्छा प्रभाव डालने की कोशिश करते हैं, ताकि वह हमारा कार्य कर दे, हमें सहयोग कर दे। वहीं जब हम किसी से नाराज होते हैं, उसे प्रताड़ित करना चाहते हैं, तो अपनी बातचीत में ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो सीधे तीर की भाँति मन में चुभते हैं और सामने वाले व्यक्ति को आघात पहुँचाते हैं। दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति अपनी वाणी का ही प्रयोग करता है, लेकिन उसका प्रभाव व परिणाम, उसके प्रयोग के आधार पर अलग-अलग होता है।

बोल-चाल की अच्छी आदतें जहाँ हमें उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में मदद करती हैं, तो वहीं बोल-चाल की बुरी आदतें हमारे उन्नति के शिखर पर पहुँचने में बाधा पहुँचाती हैं। बोल-चाल की अच्छी आदतें जहाँ हमारे संबंधों में मधुरता घोलती हैं, तो वहीं बोल-चाल की खराब आदतें हमारे संबंधों में कड़ुआहट घोलती हैं।

बोल-चाल हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा है, हमारे व्यक्तित्व का अभिन्न भाग है। बोल-चाल के माध्यम से ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का स्तर प्रदर्शित करता है। कोई व्यक्ति कैसा है? उसके बातचीत के ढंग से ही बहुत कुछ पता चल जाता है। बोल-चाल के माध्यम से जहाँ हम बिगड़ी हुई बातों को सुधार सकते हैं, तो वहीं बनी हुई बातों को बिगाड़ भी सकते हैं।

बातचीत की कला ऐसी है, जो जीवनभर हमें कुछ-न-कुछ सिखाती है। हमारी बातचीत व व्यवहार हमेशा एक जैसे नहीं रहते, हमारी मनःस्थिति के अनुसार ये बदलते रहते हैं। सब लोगों के प्रति हमारा व्यवहार व नजरिया भी एक जैसे नहीं होते, इसलिए सबके प्रति अलग दृष्टिकोण के कारण सबके प्रति हमारी बोल-चाल भी भिन्न-भिन्न होती है। कभी हम बहुत अच्छे से बातचीत करते हैं, तो कभी-कभी हमारी बातचीत में नाराजगी घुली होती है, कभी हमारी वाणी में गुड़ की मिठास होती है, तो कभी मिरची-सा तीखापन। कभी हमारे शब्दों से फूल बरसते हैं, तो कभी उनसे काँटों की बौछार होती है। इसलिए किस तरह की वाणी का हमें कहाँ प्रयोग करना है, यह समझने की बेहद जरूरत है, यदि वाणी का गलत प्रयोग किया जाए तो वह लक्ष्य को न भेदकर अन्य किसी को आहत कर सकती है और हमारा नुकसान कर सकती है।

इसलिए हमें बातचीत करने की अच्छी आदतों को अपनाना चाहिए और हमें अच्छी बातचीत केवल बाहर वालों से ही नहीं, बल्कि अपनों के साथ भी करनी चाहिए। ❑

हिमालय से एक नदी का उद्‍गम हुआ और उसका जल पहाड़ियों से नीचे उतरता हुआ मैदान में आया। एक व्यक्ति इस प्रक्रिया का बड़ी गंभीरता से अध्ययन कर रहा था। जल बढ़ता रहा, उसमें अनेक जल-नद आकर मिले। उन्होंने भी नदी का रूप ले लिया। नदी बहती चली गई और अंत में सागर में समाहित हो गई। देखने वाले व्यक्ति ने इस मंजिल को जल की मूर्खता माना। हिमालय के उच्च शिखर को छोड़कर अनेक कष्ट-कठिनाइयाँ उठाकर खारे जल में मिलना मूर्खता नहीं तो और क्या है? नदी ने व्यक्ति को देखा तो मनःस्थिति समझ गई। बोली—"तुम हमारी यात्रा का मर्म नहीं समझ सके। हिमालय कितना भी ऊँचा क्यों न हो, वह पूर्ण नहीं है। पूर्णता तो गहराई में है, जहाँ सारी कामनाएँ निश्शेष हो जाती हैं। मैं हिमालय जैसी महान ऊँचाई की आत्मा हूँ, जो सागर की गहराई में पूर्णता पाने के लिए निकली थी। निरंतर चलते रहकर ही मैंने अपने लक्ष्य को पाया है।"

युगगीता — 237

अंतर्यामी हैं भगवान



(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवें अध्याय की चौदहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक की व्याख्या विगत किस्त में की गई थी। उक्त श्लोक में श्रीभगवान, अर्जुन से कहते हैं कि प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को यह समझा रहे हैं कि जिस प्रकार बाहर फैले हुए प्रकाश के स्रोत—सूर्य, चंद्र एवं अग्नि का आधारभूत कारण मैं हूँ, उसी तरह से सभी प्राणियों के शरीर में निवास करने वाला प्राण-अपान से युक्त जठराग्नि भी मैं ही हूँ, जो अन्न को पचाती है। इस तरह बाहर से लेकर भीतर तक की सभी शक्तियों का मूल कारण एवं आधार श्रीभगवान ही हैं। दूसरे शब्दों में श्रीभगवान यहाँ इसी सत्य को स्पष्ट कर रहे हैं कि जिस प्रकार अग्नि की प्रकाश शक्ति उनके ही तेज का अंश है, उसी प्रकार उसकी जो उष्णता है, पाचन शक्ति है—वह भी उनकी ही शक्ति का एक अंश है। इस शक्ति के माध्यम से वे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य एवं चोष्य अर्थात चबाकर खाए जाने वाले, चाटकर खाए जाने वाले, निगलकर खाए जाने वाले एवं चूसकर खाए जाने वाले भोजन को पचाते हैं।

इस संदर्भ में महाभारत में राजा अश्वपति की कथा आती है, जो वैश्वानर विद्या के सुप्रसिद्ध उपासक थे। एक बार महर्षि आरुणि उद्दालक के नेतृत्व में गृहस्थ वेदज्ञों का एक दल उनसे इस विद्या को जानने की अभीप्सा लेकर पहुँचा। उन्हें समझाते हुए राजा अश्वपति बोले कि वैश्वानर सारे लोकों में, सारे प्राणियों में एवं सारी आत्माओं में भोक्ता रूप में विद्यमान है। जो मनुष्य प्रतिदिन भोजन के समय प्राप्त अन्न को यज्ञ से मिला अन्न समझकर अपने उदरस्थ वैश्वानर का अग्निहोत्र करता है, वह सारे लोकों, समस्त प्राणियों और समस्त आत्माओं को तृप्त करता है। इस तरह प्राणियों के शरीर में रहने वाला वैश्वानर भी परमात्मा की ही शक्ति का एक अंश है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण अपना अगला सूत्र कहते हैं—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ 15॥

शब्दविग्रह—सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, सन्निविष्ट, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम्॥

शब्दार्थ—मैं (ही) (**अहम्**), सब प्राणियों के (**सर्वस्य**), हृदय में (**हृदि**), अंतर्यामी रूप से स्थित हूँ (**सन्निविष्टः**), तथा (**च**), मुझसे (ही) (**मत्तः**), स्मृति (**स्मृतिः**), ज्ञान (**ज्ञानम्**), और (**च**), अपोहन (**अपोहनम्**), होता है (**भवति**), और (**च**), सब (**सर्वैः**), वेदों द्वारा (**वेदैः**), मैं (**अहम्**), ही (**एव**), जानने के योग्य हूँ (तथा) (**वेद्यः**), वेदांत का कर्त्ता (**वेदान्तकृत्**), और (**च**), वेदों को जानने वाला भी (**वेदवित्**), मैं (**अहम्**), ही (हूँ) (**एव**)।

अर्थात मैं ही संपूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। संपूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि परमेश्वर के रूप में वे अंतर्यामी हैं और इसीलिए हृदय क्षेत्र में वे विशेष रूप से उपलब्ध एवं उपस्थित हैं।

ऐसा ही वचन श्रीभगवान ने गीता के तेरहवें अध्याय में भी कहा था, जब वे बोले थे—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

—13/17

अर्थात वह परब्रह्म ज्योतियों की भी ज्योति एवं माया से अत्यंत परे है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है।

भगवान श्रीकृष्ण यहाँ उस वचन को पुनः दोहराते हैं; क्योंकि वे यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जिनका अंतःकरण शुद्ध, निर्मल एवं स्वच्छ होता है, उनके हृदय में परमात्मा का सहज दर्शन संभव है। इसी के साथ ही वे यह भी कहते हैं कि प्राणियों को प्राप्त होने वाले तीनों तरह के ज्ञान—स्मृति, ज्ञान एवं संशय का निवारण उन्हीं के द्वारा होता है एवं वे ही वेदों में प्रदत्त ज्ञान का अंतिम विषय, वेदांत के कर्त्ता तथा वेदों को जानने वाले हैं।

अंतर्यामी का अर्थ होता है कि जो भीतर की खबर रखता हो। बाहर जो चल रहा है, उसको जानने के अनेकों तरीके हैं, पर उनको जान लेने से मनुष्य के अंतःकरण में क्या चल रहा है, उसकी खबर नहीं मिल पाती। संभव है कि व्यक्ति बाहर सब कुछ अच्छा दिखा रहा हो, परंतु उसके मन-मस्तिष्क में कुछ और ही चल रहा हो। उसको जानने वाला, भीतर जो छिपा है उसको जानने वाला जो है, वह अंतर्यामी कहलाता है। श्रीभगवान यहाँ इस सूत्र में कहते हैं कि वे अंतर्यामी रूप में सभी के हृदय में स्थित हैं।

जितनी भी आध्यात्मिक पद्धतियाँ हैं, उपनिषदों में भी ज्ञान की जितनी प्रक्रियाएँ दी गई हैं, वे सभी यह ही प्रयत्न करती हैं कि हम उस अंतर्यामीस्वरूप तक पहुँच जाएँ। जैसा उपनिषद् का सूत्र कहता है कि नेति-नेति। उसके अनुसार सबको छोड़ते जाने के बाद, सबको नकारने के बाद जब उससे मुलाकात होती है, जिसे किसी के द्वारा जाना नहीं जा सकता, वह ही ज्ञान का अंतिम शिखर है, वह ही ज्ञान का मूल है, उद्गम है, वह ही अंतर्यामी है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि परमात्मा उसी अंतर्यामी रूप में हमारे भीतर उपस्थित हैं।

इसके बाद वे तीन शब्दों का प्रयोग और करते हैं। स्मृति, ज्ञान और अपोहन का मतलब है—उलझनों का अंत। मन में किसी-न-किसी तरह की उलझन सदा चलती रहती है। कोई-न-कोई संशय, सदा वहाँ जड़ बनाए बैठा रहता है। इस संशय का अंत होता है—जब चित्त पूर्णरूपेण शांत, शुद्ध एवं निस्तब्ध हो जाए। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्राणियों के भीतर आत्मस्मृति, उस मूलस्वरूप की स्मृति जिसे हम भूल गए हैं, आत्मज्ञान एवं अपोहन की अवस्थाएँ भी उन्हीं के कारण प्राप्त होती हैं। जिस ज्ञान की ओर वे इशारा कर रहे हैं वो ज्ञान—प्रज्ञा से संबंधित है। ऐसा ज्ञान संशय से मुक्त हो जाने पर ही मिलता है। इसीलिए महर्षि पतंजलि योगसूत्र में कहते हैं—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा

—योगसूत्र 1/48

शुभं ब्रूयाच्छुभं ब्रूयात्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह॥

अर्थात—शुभ हो, कल्याण हो; ऐसा ही दूसरों से बोलना चाहिए। अकारण का वैर-विवाद किसी के साथ नहीं करना चाहिए।

ऐसा ज्ञान जिसमें कोई दुविधा, संशय, उलझन एवं ऊहापोह न हो, ऐसा ज्ञान बाहर से नहीं मिल सकता, बल्कि भीतर से ही मिल सकता है। इसीलिए ऐसा ज्ञान ही वेदों का अंतिम निष्कर्ष बन जाता है, वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला बन जाता है। श्रीभगवान कहते हैं कि वह ज्ञान वे स्वयं हैं। सरल शब्दों में इन सभी ज्ञानों के मूल में तत्त्व एक ही है, मात्र उसके वर्णन की, व्याख्या की भिन्नताएँ हैं। यह ज्ञान सभी के हृदय में सदा उपस्थित है और इसी को भगवान श्रीकृष्ण अपरा अंतर्यामी रूप कहते हैं। उनके इस सर्वत्र, सर्वज्ञ एवं शाश्वत स्वरूप की प्राप्ति ही हर साधक की साधना का अंतिम ध्येय कही जा सकती है।

(क्रमशः)

शिक्षा-क्रांति से ही छाया हुआ कुहासा मिटेगा



कभी मैकाले ने जो बीज बोए थे, आज उनकी कँटीली फसल से समूचा देश लहूलुहान हो रहा है। पर मैकाले से मुकाबला कौन करे? यह सवाल आज के दौर में कुछ उसी तरह से है, जिस तरह से कभी चूहों के झुंड में यह सवाल उठता था कि बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे? नुकसान से सभी परिचित हैं, पर समाधान का साहस कौन करे? आज की शिक्षा में कुंठा, निराशा और हताशा की पर्याय बनी कुछ डिग्रियाँ, उपाधियों के छोटे-बड़े ढेर बचे हैं।

भारत में अँगरेजी राज ने यह संभव कर दिखाया कि वैचारिक साम्राज्य की स्थापना राजनीतिक साम्राज्य की स्थापना से कहीं ज्यादा प्रभावी होती है; क्योंकि वह समाज के जीवन और संस्कृति में गहरी घुसपैठ कर जाती है। वह अचेतन रूप से आदमी के सोच-विचार की प्रक्रिया और वैचारिक जीवन को बदल देती है, और इस तरह से कि किसी को अंदाज भी नहीं लगता है। कोई बाहरी देश यदि आक्रमण करे तो उसका प्रतिकार लड़कर किया जाता है और सजगता रहे तो उसे रोका जा सकता है। जब हम मन में और अपने विचार में कठिनाई को महसूस करना बंद कर देते हैं तो असली गुलामी शुरू होती है। तब जो वास्तव में अकल्याणकारी और अमंगल का द्योतक होता है, वह हमें श्रेयस्कर और प्रिय लगने लगता है। हम ललचाई नजरों से उसे देखने लगते हैं। यह दासता का शायद निकृष्टतम रूप होता है।

सांस्कृतिक अधीनता केवल किसी परायी संस्कृति को अपनाने तक ही सीमित नहीं रहती है। वह अपनी संस्कृति का उन्मूलन भी करने लगती है, जैसा कि दार्शनिक के०सी० भट्टाचार्य ने स्वतंत्रता मिलने के दो दशक पहले विचारों में स्वराज की बात करते हुए आगाह किया था कि जब बिना किसी समीक्षा या मूल्यांकन के बाहरी प्रभाव को हम विवेकशून्य होकर अपना लेते हैं तो दूसरी संस्कृति हम पर अपना आधिपत्य जमाते हुए हमें अपने वश में कर लेती है। इस तरह की स्थिति समाज में गहरे पराभव और दासता की द्योतक होती है। भट्टाचार्य ने यह भी कहा था कि जब इस बात का अनुभव होता है और उस अनुभव को हम अपनी प्रेरणा बनाते हैं तो विचारों में स्वराज आता है। तब एक नया आत्मबोध उपजता है।

प्रश्न है कि क्या इस तरह की स्थिति भारतीय समाज के जीवन में कभी आ सकी? महात्मा गांधी, संत विनोबा, डॉ0 लोहिया और पंडित दीनदयाल उपाध्याय सरीखे कुछ विचारकों ने इस पर जरूर सोचा और स्वराज और स्वदेशी की जमकर वकालत की। उसके कुछ प्रयोग भी शुरू किए, पर मानसिक पराभव इतना जबरदस्त था कि इन प्रयासों को व्यापक राजनीतिक संस्पर्श नहीं मिल सका और वे अभी भी प्रतीक्षारत हैं। आज जब भारत की शिक्षा-नीति पर विचार चल रहा है तो वैचारिक स्वराज का प्रश्न खड़ा होता है; क्योंकि बिना वैचारिक स्वराज के ज्ञान के क्षेत्र में कोई गति नहीं दिखती। हमें शिक्षा के आयोजन में इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचना चाहिए।

हमने बिना विचार किए विदेशी संस्कृति और विचार को कल्याणकारी मानते हुए शिक्षा के आधार के रूप में स्वीकार किया और अपनी संस्कृति को कोई मौका ही नहीं दिया। उसे सिरे से अवैज्ञानिक, दकियानूसी और विकासविरोधी घोषित करके खारिज कर दिया। देशज संस्कृति की समृद्धि, उसका परिचय और मूल्यांकन तक हमने नहीं किया और मानक के रूप में पश्चिमी ज्ञान और संस्कृति को स्वीकार किया और उसे परोसा। यदा-कदा उसी विदेशी दृष्टि से अपनी संस्कृति को देखने की कोशिश भी की गई। प्रायः यह दिखाना ही ध्येय बना कि यहाँ भारत में भी वैसा ही था या वैसा ही मिलता-जुलता था, पर मानक वही पश्चिमी संसार और उसका विचार ही रहे। अब हम अपनी संस्कृति और ज्ञान-परंपरा से इतने दूर होते जा रहे हैं कि भारत के देशज ज्ञान की तरफ कुतूहल और आश्चर्यमिश्रित प्रतिक्रिया करते हैं। उसे अपनी चीज के रूप में नहीं देख पाते हैं। वह परायी ही बनी रहती है। उसका पश्चिमी ज्ञान की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाता है; क्योंकि वही ठीक करार दिया गया है।

समाज विज्ञान में बहुत-सी बातें अजूबे भारत की पहचानी गई हैं, पर वे ज्ञान और विमर्श का हिस्सा नहीं बन सकी हैं। सच तो यही है कि विचार, विचार करने की पद्धति और उसकी प्रामाणिकता की व्यवस्था का पूरा विन्यास या ज्ञान-प्रौद्योगिकी हमने पश्चिम से आयातित की और उसी का वर्चस्व भी बना। दुर्भाग्यवश उसे वैश्विक और सार्वजनीन के रूप में प्रस्तुत और प्रचारित किया जाता रहा है। इस तरह का रूढ़िवादी ज्ञान विवेक को विकसित करने में बहुत सहायक नहीं हो सकता है। हममें से कुछ लोग ज्ञान के विकास का निराधार दंभ अवश्य जताते रहे हैं।

इस ढाँचे में चलने वाली शिक्षा और उसके माध्यम से एक आधुनिक मानस के निर्माण की आकांक्षा हममें बलवती रही है और उसके कुछ लाभ भी हमें मिले, पर इसका सामंजस्य भारतीय मानस के साथ नहीं बैठाया गया है। अब स्थिति कुछ ऐसी बनती-सी प्रतीत होती है मानो भारतीय मानस विस्मृत हो चला है और चेतन जगत में विशेष अहमियत नहीं रखता है। शायद अनपढ़ों और कमपढ़ों के यहाँ कुछ ज्यादा और पढ़े लोगों के यहाँ किसी तरह रीति-रिवाजों आदि में याद आ जाता हो, अन्यथा पढ़े-लिखों के लिए तो वह अनावश्यक भारतुल्य ही प्रतीत हो रहा है। भारतीय संस्कृति के लिए उनमें कोई बहुत अधिक उत्सुकता और आकर्षण शेष नहीं दिखता है।

परिस्थिति कुछ-कुछ इस तरह की लगती है कि हम पश्चिम को अभी तक पूरी तरह एक पश्चिमी मन की तरह अपना नहीं सके हैं, पर अपनाने की कोशिश कर रहे हैं और उसके आशय तक पहुँचने की चेष्टा भी कर रहे हैं। हमने अपनी शैक्षणिक संस्थाओं को भी उसी के अनुरूप ढाला है, शोध आदि की व्यवस्था भी कर रहे हैं, पर वैचारिक दृष्टि से उसका क्या लाभ मिल पा रहा है, यह चिंता का विषय है। कुछ एक अपवादों को छोड़ दें तो सर्जनात्मक दृष्टि से हम न तो विश्वचिंतन को और न ही भारतीय चिंतन को कुछ खास योगदान दे सके हैं। हम अपना ठीक से मूल्यांकन ही नहीं कर पाते हैं कि हम कहाँ खड़े हैं। हमारा पुस्तकीय ज्ञान भी अपने समाज और यथार्थ से कोई सार्थक संबंध नहीं जोड़ पाया है। हमने अपनी स्थिति का ठीक से आंतरिक मूल्यांकन भी नहीं किया है।

यह जरूर है कि पश्चिमी चिंतन के नए-से-नए आंदोलन को समझने का यत्न तुरंत करते हैं और उसकी नकल भी करते हैं। प्रायः पश्चिमी सोच से अनुप्राणित हमारी शिक्षा के संदर्भों और प्रमाणों का आधार पश्चिम ही है, पर गांधी जी के हिंद स्वराज को छोड़ दें तो पश्चिमी संस्कृति को भारत की दृष्टि में हमने कभी नहीं जाँचा-परखा। हमने पश्चिमी और भारतीय विचारों का कोई संश्लेषण भी नहीं किया है।

आयातित आधुनिक शिक्षा की ज्ञान संस्थाओं की स्थापना के सहारे देश के मानस को हमने परे धकेल उसकी जगह एक ऐसा आयातित मन बैठाया, जो न हमारे अतीत से जुड़ पाता है न वर्तमान से और न भविष्य से। सोच-विचार में मौलिकता को तिलांजलि देकर हम मात्र अनुकृति-दर-अनुकृति को ही बढ़ावा देते रहे हैं। नई शिक्षा-नीति को बनाते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि यहाँ की धरती पर उपजे विचारों और सांस्कृतिक संवेदना के विकास के साथ ही हम प्रभावी और सर्जनात्मक रूप से सोचने वाले मानस को विकसित कर सकेंगे।

जो उदारता, त्याग, सेवा और परोपकार के लिए कदम नहीं बढ़ा सकता, उसे जीवन की सार्थकता का श्रेय और आनंद भी नहीं मिल सकता।

वर्तमान शिक्षा में विद्या का समावेश होना आवश्यक है। शिक्षा के साथ छात्रों को जीवन जीने की कला, जीवन प्रबंधन एवं मूल्यों की नैतिक शिक्षा की भी जरूरत है। वर्तमान स्थिति का समाधान क्रांति की नई रोशनी में है। इसी के उजाले में नए जीवनमूल्य दिखाई देंगे। छात्रों की दशा सुधरेगी और उन्हें सही दिशा मिलेगी। इस शिक्षा क्रांति से ही शिक्षा के परिदृश्य में छाया हुआ कुहासा मिटेगा और उसका विद्यावाला स्वरूप निखरकर सामने आएगा। तभी पता चलेगा कि शिक्षा जीवन की सभी दृश्य एवं अदृश्य शक्तियों का विकास है, तभी जाना जा सकेगा कि विचार और संस्कार से ही व्यक्तित्व गढ़े जाते हैं। ❑

अच्छा करने को तत्पर युवा



युवा साहस, उत्साह एवं ऊर्जा के संघनित पुंज हैं। ये चाहें तो नई परिभाषा गढ़ सकते हैं, समाज एवं राष्ट्र का कायाकल्प कर सकते हैं। पहले समाजसेवा और व्यापार, दो भिन्न कार्य माने जाते थे। बाद में ये दोनों एक हो गए। इसका परिणाम है कि आज युवाओं की नई पौध एक से बढ़कर एक ऐसे अनोखे उद्यम शुरू कर रही है जिनसे उनका ही नहीं, समाज और पर्यावरण का भी भला होता दिख रहा है। इसमें कोई शक नहीं है कि सामाजिक उद्यमी, आम उद्यमियों से बेहतर होते हैं। उनका मकसद सिर्फ अपने फायदे के लिए व्यवसाय करना या किसी को व्यवसाय सिखाना नहीं होता, बल्कि पूरे उद्योग में क्रांति की लहर पैदा करना होता है।

मशहूर अमेरिकी उद्यमी बिल ड्रेटन का मानना है कि सामाजिक उद्यमी आज की जरूरत हैं। 'वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम' के संस्थापक क्लॉज स्वाब का कहना है कि भारत में सामाजिक सरोकारों से जुड़े स्टार्टअप बुनियादी सेवाओं को जरूरतमंदों तक पहुँचाने में बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। नासकॉम के एक हालिया सर्वे के आँकड़े भी इसी ओर इशारा करते हैं। नासकॉम की सीनियर वाइस प्रेसिडेंट संगीता गुप्ता के अनुसार देश में 400 से अधिक ऐसे सोशल उद्यम (स्टार्टअप) सक्रिय हैं, जो तकनीक की मदद से सामाजिक समस्याओं का समाधान पेश कर रहे हैं और मुनाफा भी कमा रहे हैं। मेट्रो शहर हो या गाँव, अब हर जगह युवा सामाजिक उद्यमों से जुड़ रहे हैं। 21वीं सदी की शुरुआत के आस-पास जन्मी नई पीढ़ी समाजसेवा में खासी दिलचस्पी ले रही है।

एक वक्त था, जब उद्यम का एकमात्र मकसद मुनाफा कमाना होता था। कंपनियाँ 'कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी' के तहत अपने मुनाफे का कुछ अंश समाजसेवा में खरच करती थीं। ऐसा अमूमन नहीं होता था कि कोई कंपनी समाजसेवा के माध्यम से ही पैसा कमा रही हो। धीरे-धीरे उद्यमियों को एहसास हुआ कि समाज की भलाई के काम करके भी वे अच्छी कमाई कर सकते हैं। इस तरह जन्म हुआ 'सोशल स्टार्टअप' यानी सामाजिक उद्यमिता का। आम उद्यमिता की तरह सामाजिक उद्यमिता का भी तेजी से प्रसार हुआ। बांग्लादेश में सीमेक्स जैसे सामाजिक उद्यम शुरू हुए तो भारत में आईटीसीई चौपाल और अरविंद आई केयर जैसे उद्यम सामने आए। धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती गई। पिछले कुछ सालों में तो इनकी संख्या में इतनी तेजी से वृद्धि हुई है, जितनी शायद पहले कभी नहीं हुई थी।

काम के दबाव में बहुत सारे नौकरीपेशा लोग घर के पारंपरिक खाने से वंचित रह जाते हैं। बाहर का खाना खा-खाकर वह घर का स्वाद मानो भूल ही जाते हैं। ऐसे में पारंपरिक दस्तरख्वान तक लोगों को पहुँचाने का बीड़ा उठाया है 'ऑथेंटीकुक स्टार्टअप' ने, जो अपने मकसद के लिए घरेलू महिलाओं की मदद ले रहा है। इस स्टार्टअप से जुड़ी महिलाएँ अपने प्रदेश के खास व्यंजन बनाने में निपुण हैं। यह लोगों की माँग पर न सिर्फ उनके प्रदेश विशेष का खाना मुहैया कराता है, बल्कि उस खाने को परोसने का तौर-तरीका भी उस प्रदेश की परंपरा के अनुरूप रखता है।

इंटरनेट आज आम जरूरत है; जबकि कचरा बड़ी समस्या। मुंबई के प्रतीक अग्रवाल और राज देसाई ने इन दोनों को मिलाकर एक अनूठा स्टार्टअप शुरू किया, जिसके तहत बेंगलुरू, कोलकाता और दिल्ली जैसे शहरों में कुछ कूड़ेदान रखे गए हैं। इन कूड़ेदानों में कूड़ा डालते ही एक विशेष सिग्नल प्राप्त होता है, जिसकी मदद से हम अपने मोबाइल फोन को वाईफाई से जोड़ सकते हैं। इसे 'वाईफाई ट्रैशबिन' कहा जा रहा है। प्रतीक और राज को यह अनोखा कूड़ेदान बनाने की प्रेरणा फिनलैंड, डेनमार्क और सिंगापुर जैसे देशों से मिली। इसके लिए उन्होंने पैसा भी खुद ही जुटाया। अब मोबाइल टेलीसिस्टम्स (एमटीएस) ऑपरेटर भी इनकी मदद कर रहे हैं।

दावत हमारी संस्कृति का हिस्सा है, लेकिन हरेक दावत के साथ डिस्पोजेबल (एक बार प्रयुक्त) बरतनों का

ढेर सारा कचरा भी पैदा होता है, जिसे निपटाना एक बड़ी समस्या है। इसको ध्यान में रखते हुए लक्ष्मी शंकरन और ऋषिता शर्मा ने 'रेंट अ कटलरी' स्टार्टअप शुरू किया, जो लोगों को भोज या पार्टी के लिए चीनी मिट्टी के बरतन उपलब्ध कराते हैं। यह पानी की बचत में मददगार है; क्योंकि एक छोटे डिस्पोजेबल कप को बनाने में करीब 4.5 लीटर पानी लगता है।

इसी तरह प्लास्टिक पर्यावरण के लिए बड़ी समस्या है। इसका निस्तारण तमाम सरकारों और कंपनियों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। अपने घरों में ही हम यह सुनिश्चित नहीं कर पाते कि आखिर प्लास्टिक का करें तो क्या करें, लेकिन नोएडा के पारस सलूजा ने इस मुश्किल सवाल का एक बेहतर जवाब खोजा है। वह लोगों के घरों से बेकार प्लास्टिक इकट्ठा करते हैं और उससे टाइल का निर्माण करते हैं। पारस यह काम अपने सोशल स्टार्टअप 'शनाया इको यूनिफाइड' के माध्यम से कर रहे हैं। उन्होंने इस काम में 'नेशनल फिजिकल लैबोरेट्री' के वैज्ञानिकों से भी सहयोग लिया है। पारस की इस अनूठी पहल के परिणाम भी खासे उत्साहजनक हैं।

सन् 2018 से अब तक वह 275 टन प्लास्टिक इकट्ठा कर के लगभग छह लाख पर्यावरण के अनुकूल टाइल्स बना चुके हैं। उनके काम की अहमियत को समझते हुए लोगों ने उनके टाइल का उपयोग करना भी शुरू कर दिया है। दिल्ली-एनसीआर के बहुत से रिहायशी इलाकों ने अपने खेल के मैदानों में उनके टाइल बिछाए हैं।

मंदिर में पूजा में इस्तेमाल किए गए फूल बाद में अक्सर फेंक दिए जाते हैं और प्रदूषण की वजह बनते हैं, लेकिन कानपुर के अंकित अग्रवाल और करन रस्तोगी ने इन बेकार फूलों को ही कच्चा माल बनाकर अपना स्टार्टअप 'हेल्प अस ग्रीन' शुरू किया। उन्होंने बेकार फूलों से खाद और अगरबत्ती बनाईं। ये उत्पाद लोगों को पसंद भी आए। इससे उत्साहित होकर उन्होंने दुनिया का पहला 'नॉन टॉक्सिक' थर्माकोल, फ्लोराफोम तैयार किया। अब वे फूलों से विशेष प्रकार का चमड़ा बनाने में जुटे हैं। उन्होंने 2015 में जब यह स्टार्टअप शुरू किया था, तब वे कॉरपोरेट नौकरियों में थे। पर जब उनके पास हर महीने 72 हजार रुपये बचने लगे, तो उन्होंने नौकरियाँ छोड़ दीं। आज ये दोनों कानपुर के करीब 40 मंदिरों से मिलने वाले पाँच टन फूलों से उत्पाद तैयार कर रहे हैं। अब उनका काम सिर्फ कानपुर तक ही सीमित नहीं है। यूनिसेफ द्वारा पुरस्कार के लिए चुने जाने के बाद अब वे काशी, मथुरा और वृंदावन में भी अपने काम को विस्तार देना शुरू कर चुके हैं।

मन में उत्साह और कार्य करने की लगन हो तो युवावर्ग असंभव को संभव कर सकता है। समाज, पर्यावरण, राष्ट्र के लिए यह जज्बा औरों को भी कुछ करने को अवश्य प्रेरित करेगा। ❑

व्यक्तिगत जीवन—जीवनयात्रा का प्रारंभ स्थान है और समष्टिगत जीवन—जीवन का ध्येय बिंदु गंतव्य। व्यक्तिगत जीवन अपूर्ण है, वह सामाजिक जीवन में आत्मसात् होकर ही पूर्ण बनता है। ठीक उसी तरह जैसे बूँद समुद्र में मिलकर पूर्णता प्राप्त करती है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारा जीवन हमारे प्रत्येक कार्यकलापों का आधार व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत हो-सार्वभौमिक हो। रचनात्मक और दूसरों के लिए हितकारी हो। मनुष्य अपने लिए न जिए, वरन समाज के लिए, संसार के लिए जिए। इसी सत्य पर व्यक्ति का उत्थान संभव है और साथ ही समाज में परस्पर सहयोग, आत्मीयता, सौजन्य के संबंध कायम होते हैं। विश्व यज्ञ में मनुष्य का प्रत्येक प्रयास आहुति डालने के सदृश हो तो धरती पर स्वर्ग की कल्पना साकार हो उठे।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1

समग्र जीवन के सुदृढ़ आधार—योग एवं तप



(पूर्वार्द्ध)

परमपूज्य गुरुदेव की उद्बोधनशैली की यह मौलिकता है कि वे मनुष्य को एक सर्वांगीण और सार्थक जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रस्तुत उद्बोधन में परमपूज्य गुरुदेव आध्यात्मिक जीवन के दो सशक्त आधारों के विषय में चर्चा करते हैं, जिनका नाम योग एवं तप है। युगऋषि कहते हैं कि योग का अर्थ मात्र शारीरिक प्रक्रियाओं से नहीं है, वरन इसका उद्देश्य भगवान में पूर्णरूपेण लय हो जाने से है और ऐसा तभी संभव है जब हम अपने अहंकार का संपूर्ण विसर्जन करने के लिए तैयार व तत्पर हों। वे कहते हैं कि यह जीवन तृष्णाओं और कामनाओं की पूर्ति में भटकने में ही व्यर्थ चला जाता है और यदि हमें जीवन को एक समग्र स्वरूप प्रदान करना है तो इन आध्यात्मिक आधारों को अपनाना ही होगा। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

अपूर्ण से पूर्ण बनने का पथ

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

देवियो, भाइयो! हमारे जीवन का लक्ष्य पूर्णता को प्राप्त करना है। हम अपूर्ण हैं। अपूर्णता को क्रम से पार करते हुए हमें पूर्णता तक चले जाना है। पूर्णता की लंबी मंजिल को पार करना है। यही हमारा लक्ष्य है और यही हमारे जीवन का क्रियाकलाप है। हमको लंबी मंजिल पार करनी है। चलते हुए इन टाँगों पर सवार होकर हमको लंबी मंजिल पार करनी पड़ेगी। वे टाँगें क्या हैं? वे कदम क्या हैं? लेफ्ट और राइट हैं।

लेफ्ट और राइट के तरीके से करते हुए, सिपाही से लेकर के सामान्य नागरिक तक वह हर पल, प्रतिपल बढ़ता हुआ चला जाता है। वह दो पाँवों को क्रमशः उठाता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। वे दो पाँव कौन से हैं? अपूर्णता से पूर्णता को प्राप्त करने के लिए जीवभाव को समाप्त करके, ब्रह्मभाव तक जा पहुँचने के लिए कौन-सी मंजिलें हैं? मंजिलें दो हैं—एक को हमने योग के नाम से पुकारा है और एक को हमने तप के नाम से पुकारा है।

मित्रो! योग और तप—यही दो मंजिलें हैं। यही द राहें हैं, जिनको पूर्ण करते हुए जीवात्मा परब्रह्म परमात्म तक जा पहुँचता है। ये दो राहें क्या हैं? दो मंजिलें क्या हैं दो कदम क्या हैं? योग क्या है? योग का अर्थ होता है— जोड़ देना। किसको किसके साथ जोड़ देना? जीव को ब्रह के साथ जोड़ना, क्षुद्रता को महानता के साथ जोड़ देना हमारी परिधियाँ, हमारी सीमाएँ बहुत छोटी हैं। छोटे वाले दायरे में हैं। इसे किसके साथ जोड़ना है? उस महानता के साथ जोड़ना, जो चहुँ ओर फैली हुई है। हम अपने छोटे से दायरे को समाप्त करेंगे और विशाल में लय हो जाएँगे, लीन हो जाएँगे। जैसे कि हम कितनी बार गंगा का उदाहरण दे चुके हैं। छोटा वाला नाला गंगा में लय हो जाता है, लीन हो जाता है। छोटी वाली बूँद अपनी हस्ती को और अपने अस्तित्व को मिटाकर के समुद्र में लीन हो जाती है और लय हो जाती है। हमको भी लीन हो जाना है और लय हो जाना है। कहाँ लय हो जाना है? भगवान में लय हो जाना है।

भगवान में लय होना योग

मित्रो! भगवान में किस तरीके से लय होना होगा? भगवान कहाँ रहता है? भगवान के पास हम किस तरीके से जाएँगे? भगवान में किस तरीके से लय होंगे? भगवान

व्यापक है और भगवान विभु है। सबमें समाया हुआ है। उसका दृष्टिकोण बड़ा विशाल है। स्वयं के लिए कुछ चाहता है कि नहीं? हमसे और आपसे भगवान क्या चाह सकता है और हम और आप भगवान को क्या दे सकते हैं? हम तो एक जर्रा हैं, कण हैं और वह तो ब्रह्मांड के बराबर विस्तृत है। हम क्या दे पाएँगे उसको? हम उसको कुछ नहीं दे सकते। फिर क्या दे सकते हैं? मित्रो! हमको अपने आप को, अपनी हस्ती को भगवान को प्रदान करना पड़ेगा। अपनी हस्ती को क्यों? अपनी हस्ती, जो कि पानी का एक बबूला है, जो अपने चारों ओर हवा का एक घेरा बना करके बैठा है। उसके अंदर हवा भर दी गई है। हवा के भर जाने के कारण पानी का जो बबूला था, उसने अपना घेरा अलग बना लिया। अपना दायरा अलग बना लिया। लोगों ने उसका मजाक उड़ाया कि देखो, वो बबूला चल रहा है। अब बबूला समाप्त हो गया।

मित्रो! जब कोई अलग हो जाता है, तो पानी का बबूला हो जाता है। क्षणभर में मजाक की चीज बन जाता है। कभी उसकी संपदाएँ बनती हैं और कभी उसकी संपदा बिगड़ती है, नष्ट हो जाती है। ये संपदाएँ क्या हैं? यह हमारा 'मैं' का एक छोटा-सा दायरा हमने हवा का भर दिया और वह बबूला अलग हो गया। किससे? पानी से अलग हो गया, हवा से अलग हो गया, लहरों से अलग हो गया। तब दिखाई पड़ने लगा कि इससे भिन्न होने के माद्दे को, भिन्न होने की वृत्ति को अब हम समाप्त करेंगे और पानी की लहर बनकर रहेंगे और पानी की धारा बनकर रहेंगे। पानी का बबूला, हमारा जो अलग नाम था, हम उसे खतम करेंगे। यह क्या है? संकल्प है। मित्रो! यह योग का संकल्प है। जोड़ देने का संकल्प है। बबूले ने संकल्प किया कि अब हम अपना छोटापन और छोटा-सा दायरा खतम करेंगे और पानी की धारा में मिल करके, लहरों में होकर के आगे चले जाएँगे। अपनी हस्ती को मिटा देंगे। योग इसी का नाम है। योग के लिए कई प्रकार के क्रियाकलाप करने पड़ते हैं और कर्मकांड करने पड़ते हैं। कर्मकांड साधन हैं, साध्य नहीं हैं, जैसा कि आम लोगों ने समझ लिया है।

शरीर व मन की शुद्धि का मार्ग

मित्रो! नेति, धौति, वस्ति, बज्रोली और कपालभाति आदि क्रियाएँ इसलिए की जाती हैं, ताकि हमारे शरीर की और मन की शुद्धि हो सके। शरीर के ऊपर कितने कषाय-कल्मष, पाप और ताप हमारे ऊपर चढ़े हुए हैं। अगर हम इनका समाधान नहीं कर सकेंगे, तो आगे बढ़ना मुश्किल है। मल, आवरण और विक्षेप—यही तो हैं बाँध देने वाले बंधन, जिन्होंने हमें और हमारे भगवान—दोनों को अलग कर दिया है। इन मलों को हम दूर करेंगे। इन्हें दूर करने वाली प्रक्रियाएँ हठयोग कहलाती हैं, जिनमें कि हम मलों की मलिनताओं को साफ करने के लिए उस ओर कदम बढ़ाते हैं। इस शरीर में—पेट में जो गंदगी भरी पड़ी है, उस मल को हम वस्ति-क्रिया के द्वारा बाहर निकालते हैं और पेशाब के भीतर जो मलिनताएँ भरी पड़ी हैं, उनको हम बज्रोली-क्रिया के द्वारा बाहर निकालते हैं और जो हमारे मस्तिष्क में गंदगी भरी पड़ी है, उसको नेति के द्वारा और गले में, पेट में जो गंदगी भरी पड़ी है, उसे धौति के द्वारा बाहर निकालते हैं, वमन-विरेचन के माध्यम से निकालते हैं।

मित्रो! योग का पहला क्रियाकलाप क्या है? गंदगी की सफाई कर देना और गंदगी को दूर करना। आप केवल शरीर की सफाई कर लेंगे, तो काम नहीं चलेगा। आपने नेति, धौति, वस्ति, बज्रोली के रूप में यह जो क्रियाकलाप किया था और उससे केवल शरीर का ही संशोधन कर लिया, तो बात कैसे बनेगी? कल फिर से कफ इकट्ठा हो जाएगा। कल फिर मल इकट्ठा हो जाएगा। परसों फिर मल इकट्ठा हो जाएगा। नाक में फिर से कफ इकट्ठा हो जाएगा, कान में गंदगी इकट्ठी हो जाएगी।

आप शरीर का संशोधन कहाँ तक करते रहेंगे? अच्छा यही मान लें कि शरीर का संशोधन तो आप कर ही लेंगे, तो उसमें शरीर का ही तो लाभ होगा न, शरीर का ही तो परिष्कार होगा न? जीभ तो अलग है न। शरीर मिलने वाला होगा, तो मिट्टी में ही तो मिलेगा न। शरीर को कभी मिलना पड़ा, तो वह भगवान में मिल ही नहीं सकता। शरीर हमेशा मिट्टी में ही मिलने वाला है। पानी में, हवा में मिलने वाला है। मरने के बाद हमारा शरीर हवा में मिल जाएगा और पानी में, मिट्टी में शामिल हो जाएगा। भगवान में कहाँ से मिलेगा? शरीर तो जड़ है। जड़ पेड़ में मिल जाएगी। जड़ का संशोधन आप करते हुए चले जाइए। मान लीजिए कि आपने आँखों की सफाई कर ली। नाक की, कान की, मल-मूत्र की सफाई कर ली। सारी सफाई के बावजूद हुआ क्या? शरीर तो साफ हो गया न, तो ज्यादा-से-ज्यादा क्या होगा? शरीर की बीमारियाँ नहीं होंगी। ठीक है, आप

अच्छी तरह से रहेंगे। आपको बुखार नहीं होगा। बात समाप्त हो गई। यह तो शुरुआत हुई।

मित्रो! प्रत्येक कर्मकांड के पीछे एक धारा जुड़ी हुई है, एक दिशा जुड़ी हुई है, एक लक्ष्य जुड़ा हुआ है। वह लक्ष्य, दिशा और धारा आपके ध्यान में नहीं आई, तो मित्रो! बात कुछ बनेगी नहीं। आप नाक में से पानी निकालते रहेंगे और नेति, वस्ति से पानी निकालते रहेंगे। आप यह सब इसलिए करते रहेंगे कि हम योगी हो गए और हमने योगाभ्यास कर लिया। मित्रो! किसी भी तरह से यह बात बनने वाली नहीं है। शरीर स्थूल है। स्थूल की सफाई करके हम इस बात से अगला वाला कदम यह बढ़ाते हैं कि हमारे मन की सफाई होनी चाहिए। हमारे अंतःकरण की सफाई होनी चाहिए और हमारे विचारों की सफाई होनी चाहिए। योग का मतलब सिर्फ एक है—भगवान के साथ में अपने आप को जोड़ देना। उस जोड़ देने के कारण बीच में जो दीवार खड़ी हो गई है, उस दीवार को खतम कर देना। हमारे और भगवान के बीच में दीवार क्या है? हमारा 'मैं' हमारा 'अहं'। हमारा 'अहं' जो है, एक ही चीज है। अहं किस तरह से प्रकट होता है? अहं का विस्तार कैसे होता हुआ चला जाता है? अहं का दायरा कैसे बढ़ता चला जाता है?

अहंकार का दायरा कैसे बढ़ता है

मित्रो! अहं का कीड़ा किस तरीके से अपने घरौंदों को—घरों को बनाता हुआ चला जाता है। केंचुओं के घर आपने देखे हैं, कैसे टेढ़े-मेढ़े बनते हुए चले जाते हैं। केंचुओं के घरों के तरीके से हमारा अहं, हमारा छोटा-सा अहं कितना दायरा बढ़ाता हुआ चला जाता है। कल मैं दो का हवाला आपको दे रहा था—लोभ और मोह का। वासना और तृष्णा का, जो उसी की देन हैं। जब अहं शरीर से जुड़ा हुआ है, तो वह क्या चाहता है? शरीर के जो सूराख हैं, इन सूराखों में खुजली मचा करती है।

आँख के सूराख में खुजली मचा करती है। जिस तरीके से दाद पैदा होता है और उसमें खुजली होती है और यह खुजली हमको अच्छी मालूम पड़ती है। जो चीज हमको पसंद है, उसको हम देखें। खून हमको पसंद है, खून को हम देखें। नई उम्र हमको पसंद है। नई उम्र के लोगों को हम देखें। हमको सिनेमा पसंद है। हमको अमुक चीज पसंद है, हम उसको देखें। यह क्या है? हमारी आँख की खुजली है और हमारी जीभ की खुजली है। हमारी जीभ में खुजली मचती रहती है और वह मिठाई चाहती है, शक्कर चाहती है, नमक चाहती है, पकौड़ी चाहती है और मिर्च-मसाला चाहती है। चटनी, अचार चाहती है। यह क्या है? खुजली है।

मित्रो! इस खुजली का संबंध किससे है? शरीर से नहीं है। अहं से है, मैं जो हूँ, उससे है। मैं की बात हम सोचते रहते हैं। हमारा मैं उस शरीर में सीमाबद्ध हो जाता है। शरीर में जब सीमाबद्ध हो जाता है, तो शरीर में जहाँ-तहाँ छिद्र हैं, सूराख हैं, उन सूराखों में खुजली मचती रहती है। उस खुजली को पूरा करने में हम यह सुख अनुभव करते हैं कि हमारा लक्ष्य पूरा हो गया। हमारा उद्देश्य पूरा हो गया। हमारा सुख पूरा हो गया। यह क्या है? यह हमारे अहं का विस्तार है और कुछ भी नहीं है।

मित्रो! एक और खुजली मचती है। वह शरीर में नहीं, वरन दिमाग में मचती है। दिमाग की इस खुजली को हम तृष्णा कहते हैं। शरीर की भी तृष्णा कहलाती है। तृष्णा उन चीजों की, जिनको हम पकड़ नहीं सकते। जो हमारी नहीं हो सकती हैं, लेकिन हमारा अहं उन चीजों को अपने दायरे में जकड़ता, पकड़ता हुआ चला जाता है। यह हमारा घर है, यह हमारी जमीन है। अच्छा आपकी है, तो आप उठाकर के अपनी जेब में रखिए। नहीं साहब! हम तो अपनी जेब में जमीन को नहीं रखेंगे, तो क्या करेंगे? यह मेरी जमीन है। मेरी जमीन है, तो क्या यह आपने बनाई थी? नहीं, हमने तो नहीं बनाई। तो आपके पिताजी ने बनाई होगी? नहीं साहब! पिताजी ने तो नहीं बनाई, किसने बनाई?

यह तो ब्रह्मा जी ने बनाई थी। जब समुद्र में काई फैली हुई थी और काई को समेट-समेट करके उन्होंने यह जमीन बनाई थी। उसको बने तो करोड़ों और अरबों वर्ष हो गए, तो फिर जिसको आप यह कहते हैं कि यह जमीन मेरी है, तो फिर यह आपकी कैसे हुई? यह तो ब्रह्मा जी की हुई। हाँ साहब! ब्रह्मा जी की हुई। फिर लाखों-करोड़ों आदमी आपकी तरह यह कहते हुए फना हो गए, फिदा हो गए कि यह मेरी जमीन है। यह आपकी हो ही नहीं सकती। यह मकान आपका है? नहीं, यह आपका नहीं हो सकता। यह तो तहस-नहस होने वाला है। सौ-दो सौ वर्ष बाद यह नष्ट हो जाएगा। अभी तो सीमेंट का बना हुआ है। फिर

मिट्टी में शामिल हो जाएगा और बहकर कहीं चला जाएगा।

मित्रो! यह आपका मकान है। नहीं, आपका मकान नहीं है। यह मिट्टी का मकान है और मिट्टी में से जहाँ हमने गड्ढा खोदा था, बाद में वह उसी गड्ढे में चला जाएगा। यह तो यहीं-का-यहीं घूमता रहेगा। फिर मेरा कैसे हो गया? यह मेरा नहीं हो सकता। कोई भी चीज, किसी भी तरह से हमारी नहीं है। सारी-की-सारी चीजें दुनिया में जहाँ-की-तहाँ थीं, वहीं रहेंगी। आप उनमें से राई की नोंक के बराबर भी नहीं ले जा सकते। यहाँ तक कि आप जो अनाज खाते हैं, वह भी नहीं ले जा सकते। वह यहीं का है और प्रकृति कहती है कि इसे ले जाने का हक आपका नहीं है। आप यहीं-का-यहीं छोड़िए। आप पानी पी लेते हैं, रोटी खा लेते हैं चौबीस घंटे में, यह सब प्रकृति का है और प्रकृति का सब कुछ हमको वापस करना पड़ेगा। हमने सुबह जो रोटी खाई, पानी पिया, शाम को मल-मूत्र के रूप में जमीन का, जमीन को दे आते हैं। कोई भी चीज हम ले नहीं जा सकते। फिर कोई भी चीज आपकी कैसे हो सकती है? आपने जो खा लिया, वह भी चीज आपकी नहीं हो सकती।

तृष्णा का संसार

मित्रो! क्या होता है? हमारा अहं तृष्णा के रूप में जब विकसित होता चला जाता है, तो अनेक चीजों को मेरी-मेरी कहता हुआ चला जाता है। आप कहते हैं कि यह जमीन मेरी है, यह बेटा मेरा है, पोता मेरा है। यह बेटा आपका है? आपका नहीं हो सकता। आपका यह बेटा हजारों जन्मों से न जाने किसका-किसका बेटा होता हुआ चला आ रहा है और उस जीवात्मा को अभी हजारों-लाखों बार कितनों का बेटा बनना बाकी है। नहीं साहब! यह मेरा बेटा है। नहीं, आपका बेटा नहीं हो सकता। यह आपका बेटा कैसे हो सकता है? पानी के बहाव में लकड़ी के गट्ठे आपस में इकट्ठे हो जाते हैं और थोड़ी देर तक वे मिलते हैं, फिर बहकर दूर तक चले जाते हैं। बहकर चलने के बाद में हवा का एक झोंका आता है और दोनों में टक्कर मारता है। टक्कर से पानी की लहरें अलग-अलग हो जाती हैं और लकड़ी के गट्ठे बहकर अलग हो जाते हैं।

नहीं साहब! हमारा भाई था। अरे बेटे! कहाँ का भाई, किसका भाई? दो लकड़ी के पीस थे, न जाने कहाँ से बहते हुए चले आ रहे थे? गंगा का जल गंगोत्तरी से बहकर कोलकाता तक चला जा रहा है। ऐसा हजारों बार होता है कि लकड़ी का टुकड़ा न जाने कहाँ से बहकर मिलता है और फिर अलग हो जाता है। मेरा बेटा, तेरा बेटा, न जाने क्या लगा रखा है? यह हमारा खिचड़ीपन है, जिसमें कि हम चंद आदमियों को अपना मान बैठे हैं कि ये मेरे हैं और कुछ चीजों को, कुछ मिट्टी के टुकड़ों को, कुछ लोहे के टुकड़ों को, कुछ सोने, चाँदी और ताँबे के टुकड़ों को यह मानकर बैठ जाते हैं कि ये हमारे हैं। ये आपके नहीं हो सकते।

मित्रो! चाँदी कब बनी थी? जब ब्रह्मा जी ने जमीन बनाई थी, तब चाँदी भी बनाई थी। जमीन में चाँदी मिली हुई थी। ठीक है, जिन लोगों ने उसे जमीन से निकाल लिया, चाँदी उनकी हो गई। फिर जिसने खरीद लिया, उसकी हो गई। फिर टकसाल की हो गई। फिर टकसाल वालों ने उसे ढाल दिया, गवर्नमेंट की हो गई। फिर किसी ने खरीद ली, उसकी हो गई। दूसरे ने खरीदा, उसकी हो गई। चाँदी आपकी है? नहीं, आपकी नहीं हो सकती। चाँदी को धीरे-धीरे घिसते-पिसते, फिर जमीन में शामिल होना पड़ेगा, जहाँ से उसे निकाला था।

चीजों के बारे में जो लोभ है, वह लोभ वास्तव में दिमागी खुजली के अलावा कुछ है ही नहीं। वासनाएँ क्या हो सकती हैं? मित्रो! वासनाएँ कुछ भी नहीं हैं एक क्षण की, सेकंडों की चीजें हैं, जो झकझोर देती हैं। एक चीज जो अभी हमने खाई थी, बड़ी जायकेदार मालूम पड़ी। पेट जैसे ही भरा, खुजली ने मना कर दिया कि अब हमको इसकी आवश्यकता नहीं है। अब आप ले जाइए। अब हम मिठाई नहीं खाने वाले हैं, न पकौड़ी खाने वाले हैं? नहीं साहब! खानी पड़ेगी। नहीं भाई साहब! अब हम नहीं खाएँगे? हमारे पेट में दरद हो जाएगा। खुजली सेकंडों में खतम हो गई।

मित्रो! उस सत्ता के साथ हमारा कोई संबंध नहीं था, जिसको मैं जीवात्मा कहता हूँ। उसको, जिसको मंजिल पार करनी है, लक्ष्य पूरा करना है, वह लक्ष्य पूरा करने वाला जीव, जीव की सत्ता चारों ओर से कसकर बाँध दी गई है। बाँध देने के बाद में मंजिल जहाँ से चलना चाहिए, हमारी मंजिल पूरी नहीं होने पाती। कदम आगे नहीं बढ़ पाते; क्योंकि हमारी टाँगें बँधी हुई हैं और हमारे हाथ बँधे हुए हैं।

हमारी कमर बँधी हुई है। हर चीज बँधी हुई है। बँधी होने की वजह से हम मंजिल की ओर एक कदम भी नहीं बढ़ पाते, लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ पाते। हमारा योग क्षणभर के लिए नहीं हो पाता। फिर योग किस तरीके से होगा?

योग, मित्रो! कर्मकांडों से नहीं होगा। आप इस वहम को निकाल दीजिए कि हम योग कर लेंगे। नाक से पानी पी जाएँगे, तो योग हो जाएगा। बेटे, इस तरीके से नहीं होगा। चाहे नाक में पानी भर ले या नल लगा ले और सारे-के-सारे नल को खोल दे, फिर भी नहीं होगा। तो फिर कैसे होगा योग? योग कर्मकांड है ही नहीं। कर्मकांड के माध्यम से हम योग की दिशा में अग्रसर होते हैं। बस, यहीं तक बात खतम नहीं हो जाती है, इससे आगे वाली बात है ही नहीं।

मित्रो! कर्मकांड और क्रिया-कृत्य, जिनमें जप भी शामिल है, पूजा-पाठ भी शामिल है, ये सारे-के-सारे कर्मकांड हैं और कर्मकांडों का उद्देश्य जीवात्मा को मूल स्थिति से जोड़ने का संकेत करना और चिह्नित करना है, जिसको हम जीवात्मा कहते हैं। जीवात्मा के ऊपर से एक ही चीज आपको हटानी पड़ेगी। उसको आप हटा देते हैं, तो क्या हो जाता है? तब आप योगी हो जाते हैं। तब आप अपने आप को भगवान से, परमात्मा से जोड़ देते हैं। स्त्री और पुरुष अपने आप को जोड़ देते हैं। दोनों की सृष्टि एक हो जाती है। दोनों का गोत्र एक हो जाता है। दोनों का वंश एक हो जाता है। दोनों की परंपरा एक हो जाती है। दोनों की संतान एक हो जाती है। माता की संतान एक और पिता की संतान का एक ही नाम है; क्योंकि दोनों सम्मिलित हो गए न, तो फिर संतान सम्मिलित कैसे नहीं होगी?

मित्रो! हम अपने आप को जब भगवान के सुपुर्द कर देते हैं, तो क्या हो जाता है? स्वभावत: भगवान अपने आप को सुपुर्द कर देता है। हम दोनों एकदूसरे के सुपुर्द हो जाते हैं और हमारे जीवन का जो विकास होता है, हमारे जीवन का जो परिष्कार होता है, उनको हम सिद्धियाँ कह सकते हैं। जिनको हम चमत्कार कह सकते हैं, जिनको हम महानता कह सकते हैं, जिनको हम शिवपन कह सकते हैं, जिनको हम पैगंबरपन कह सकते हैं, जिनको हम ब्राह्मणत्व कह सकते हैं। जिनको हम पृथ्वी तत्त्व कह सकते हैं। यह सारी-की-सारी हमारी संतान हैं। संतानें कब पैदा होती हैं? जब हमारे जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक में शामिल हो जाते हैं।

[क्रमशः समापन अगले अंक में]

समय की आवश्यकता को देखते हुए सूर ने बालगोपाल कृष्ण को सखा-भाव से इष्ट मानकर सद्भावना का प्रसार किया। तुलसी ने मर्यादापुरुषोत्तम राम को स्वामी रूप में इष्ट मानकर लोक-जागरण का क्रम अपनाया। दोनों एकनिष्ठ भाव से अपने-अपने कार्यों में लगे रहे।

एक बार दोनों की भेंट हुई। उन्होंने अनुभव किया कि हम तो अलग-अलग नाम-रूप में एक ही इष्ट के उपासक हैं, परंतु जनसामान्य इस तथ्य को शायद न समझ पाए। इसलिए उन्होंने निर्णय किया कि अपने काव्य में सूर रामपरक तथा तुलसी कृष्णपरक संबोधनों का प्रयोग करेंगे। यही हुआ बाद के पदों में सूर ने तथा विनयपत्रिका में तुलसी ने दोनों तरह के नामों का प्रयोग किया। इस संशोधन ने जनसाधारण को भ्रमित होने से बचा लिया।

विश्वविद्यालय परिसर से –176

बहुआयामी गतिविधियों से सुसज्जित हुआ विश्वविद्यालय



देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में प्रकृति का वासंती उल्लास अपने चरम पर है। यहाँ की स्थूल और सूक्ष्मप्रकृति की दिव्यता, सुंदरता और प्रखरता में युवाओं की जीवन-ऊर्जा आप्लावित होकर निरंतर निखर रही है, चमक रही है। विद्यार्थियों के चेहरों पर दिव्य आभा लिए मुस्कान और मनों में भरे आत्मविश्वास की प्रखरता ने इस परिसर में अध्ययन करने की सच्ची सार्थकता को प्रकट कर दिया है। अब वे और अधिक उत्साह एवं जोश से लबरेज होकर परिसर की प्रत्येक गतिविधियों एवं अवसरों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर व्यक्तित्व को ऊँचाई के शिखर पर आरूढ़ करने को आतुर हैं। जो विद्यार्थी विगत सत्र में नवागंतुक थे, उन्होंने भी अब परिसर की जीवनशैली को आत्मसात् कर लिया है और सभी निरंतर अपनी अंतर्निहित प्रतिभा के विकास-पथ पर अग्रसर हैं।

परिसर के दिव्य एवं आध्यात्मिक वातावरण में आने के उपरांत परमपूज्य गुरुदेव और माताजी की सूक्ष्मसत्ता का संरक्षण, ऋषियों की तपोभूमि और माँ गंगा के सिद्ध तीर्थस्थल का सान्निध्य तथा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या व आदरणीय शैल जीजी का आध्यात्मिक अभिभावकत्व एवं मार्गदर्शन यहाँ सभी को सहज प्राप्त होता है। इस अलौकिक साहचर्य में विद्यार्थियों की जीवन-ऊर्जा उनके व्यक्तित्व को सर्वथा अनूठा और अद्वितीय स्वरूप प्रदान करती है। यही कारण है कि यहाँ से निकलकर विद्यार्थीगण देश-विदेश में जहाँ भी जाते हैं, इस परिसर की पहचान उनके व्यक्तित्व को अलग ही वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

यह सर्वविदित है कि इस परिसर में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को समग्रता में सँवारने के लिए कुछ चीजें तो यहाँ के वातावरण और जीवनशैली से नैसर्गिक प्राप्त हो जाती हैं, लेकिन शैक्षणिक, रचनात्मक और सकारात्मक पहलुओं से उनके जीवन की कुशलता और समग्रता को उभारने का कार्य यहाँ के प्रशासन एवं विभिन्न शैक्षणिक विभागों द्वारा संपन्न किया जाता है।

इसी के अंतर्गत यहाँ की शिक्षण-प्रक्रिया को अनेक तरह की रचनात्मक और बहुआयामी आंतरिक गतिविधियों से प्रभावी और नूतन स्वरूप दिया गया है। इसके साथ ही परिसर में ऐसे अन्य शिक्षणेत्तर अवसर भी उपलब्ध कराए जाते हैं, जो विद्यार्थियों के जीवन-उत्कर्ष और भावी लक्ष्यप्राप्ति में सहायक बनें। यहाँ के पाठ्यक्रमों में भी इस अनिवार्यता को सम्मिलित किया गया है कि पढ़ने के बाद विद्यार्थी अपनी शिक्षा के व्यावहारिक और प्रयोगात्मक पहलुओं से स्वयं के जीवन में लाभ उठा सकें तथा परिवार, समाज, देश, राष्ट्र और संस्कृति के उत्थान में उनकी शिक्षा उपयोगी साबित हो।

विद्यार्थियों को रचनात्मक कुशलता प्रदान करने के उद्देश्य से परिसर में निरंतर आंतरिक गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं। इन्हीं गतिविधियों के क्रम में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग द्वारा 'बिहेविरल आसपेक्ट ऑफ काउन्सिलिंग टेक्निक्स' विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला का उद्देश्य विद्यार्थियों में व्यवहार की तकनीकें एवं समझ विकसित करना था।

इस कार्यशाला में विशेषज्ञ के रूप में काउन्सलर आर्मी हॉस्पिटल, ग्वालियर के श्री संजीव सक्सेना जी पधारे थे। उन्होंने विभिन्न सत्रों में काउन्सिलिंग टेक्निक्स के अर्थ, प्रकार, व्यवहार में उपयोगिता, विभिन्न मानसिक समस्याओं में इस तकनीक का महत्त्व आदि विषयों पर व्याख्यान दिए। कार्यशाला के समापन पर विभाग समन्वयक डॉ0 संतोष विश्वकर्मा ने काउन्सिलिंग की उपयोगिता पर प्रकाश डाला एवं मुख्य अतिथि तथा विद्यार्थियों, आचार्यों का आभार व्यक्त किया।

इस वर्ष परिसर में पर्यटन दिवस को विशेष रूप से मनाया गया। विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग द्वारा इस अवसर पर सात दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए, जिनका उद्देश्य पर्यटन के क्षेत्र में रोजगार प्राप्ति के

अवसरों को पहचानना था। इस प्रशिक्षण सप्ताह में स्वास्थ्य पर्यटन, उद्योग पर्यटन, साहसिक पर्यटन, पर्यावरण पर्यटन, आध्यात्मिक पर्यटन, खेल पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन आदि के क्षेत्रों में रोजगार संबंधी व्याख्यान हुए। प्रशिक्षण के साथ-साथ रचनात्मक कार्यक्रम जैसे—क्विज, प्रस्तुतीकरण, पोस्टर, स्लोगन, साइकिल रेस, स्पून, केन्डीरेस, ट्रेजर हंट, कविता पाठ, संस्कृत श्लोक पाठ, मेहँदी, रंगोली आदि प्रतियोगिताओं को भी आयोजित किया गया।

प्रशिक्षण एवं अन्य प्रतियोगिताओं के समापन अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में पधारे विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने ऐसे कार्यक्रमों के लिए सभी का उत्साहवर्द्धन किया। उन्होंने कहा—"आज पूरी दुनिया तकनीकी माध्यमों से ग्लोबल विलेज बन गई है। ऐसे में पर्यटन के क्षेत्र में भी असीम संभावनाएँ सामने आई हैं। पर्यटन में डिग्री पाकर अपना कैरियर बनाने के साथ ही विद्यार्थी समाज व देश को नई दिशा दे सकते हैं। पर्यटन के विभिन्न आयामों पर नई-नई थीम को लेकर स्वावलंबी बनकर स्वरोजगार की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।" कार्यक्रम के अंत में प्रतिकुलपति महोदय जी ने प्रतियोगिताओं में विजेता विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया। विभागाध्यक्ष डॉ० अरुणेश पाराशर एवं डॉ० उमाकांत इंदौलिया ने इस आयोजन को नवीन रूप से संपन्न कराने में मुख्य भूमिका निभाई। साथ ही पर्यटन विभाग के आचार्यों, विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक भागीदारी एवं सहयोग प्रदान किया।

रचनात्मक गतिविधियों के क्रम में विश्वविद्यालय के मानविकी, सामाजिक विज्ञान एवं आधार पाठ्यक्रम स्कूल द्वारा गांधी जयंती के उपलक्ष्य में साप्ताहिक स्वच्छता अभियान चलाया गया। एन.सी.सी., धर्मविज्ञान, मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र विभाग के आचार्यों एवं विद्यार्थियों ने आयोजन प्रारंभ के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के बाहरी गेट से शांतिकुंज तक स्वच्छता एवं जागरूकता अभियान चलाया।

इसके साथ ही ग्राम प्रबंधन विभाग, संचार विभाग, पर्यटन विभाग, इतिहास विभाग, एन0 एस0 एस0 आदि ने भी इस अभियान में भागीदारी कर आयोजन को व्यापक स्वरूप प्रदान किया। श्रम, स्वास्थ्य और स्वच्छता का संदेश लेकर विश्वविद्यालय परिसर के बाहरी क्षेत्र को जाग्रत और जागरूक बनाने वाले इस आयोजन की प्रतिकुलपति जी ने सराहना करते हुए सभी को शुभकामनाएँ प्रदान कीं। उन्होंने कहा बाहरी स्वच्छता के साथ-साथ आज के युग में आंतरिक शुद्धता की भी अत्यंत आवश्यकता है।

विभागीय गतिविधियों के अंतर्गत पर्यटन विभाग में पिछले तीन माह से चल रही जर्मन भाषा की कक्षाओं का सफलतापूर्वक समापन हुआ। कक्षाओं की समन्वयक कु० सौम्या के अनुसार विद्यार्थियों ने इस भाषा को सीखने में अद्‌भुत कौशल का प्रदर्शन किया। कक्षाओं के समापन अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि दो भाषाओं का पारस्परिक संवाद भावनात्मक रूप से जोड़ता है। इन कक्षाओं के कुशल संचालन हेतु उन्होंने पर्यटन विभाग की सराहना की।

विश्वविद्यालय भ्रमण के क्रम में विगत दिनों प्रो० क्रिस्टोफर चैपल, इंडिक एंड कंपेरेटिव थियोलॉजी के प्रोफेसर और योग स्टडीज में मास्टर आफ आर्टस, लोयोला मैरी माउंट यूनिवर्सिटी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया एवं प्रतिकुलपति जी से मुलाकात की। उल्लेखनीय है कि उपरोक्त विश्वविद्यालय, अकेला ऐसा विश्वविद्यालय है, जिसे अमेरिका में योग के क्षेत्र में शैक्षणिक पाठ्यक्रम चलाने की अनुमति वहाँ की सरकार द्वारा प्रदान की गई है। इस विश्वविद्यालय के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय अनेक परियोजनाओं पर सम्मिलित रूप से कार्य कर रहा है।

इसी क्रम में जर्मनी के प्रसिद्ध योगविद्या आश्रम से श्री हुबनेर, निर्देशक, योगविद्या संगठन ने भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंटवार्त्ता की तथा उन्हें योगविद्या द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न नए कार्यक्रमों से अवगत कराया। योगविद्या संगठन यूरोप का योग के क्षेत्र में सबसे बड़ा संगठन है, जिसके जर्मनी स्थिति विद्यालय में 800 से अधिक विद्यार्थी आवासीय स्तर पर शिक्षा प्राप्त करते हैं। प्रतिकुलपति के विगत यूरोपीय दौरे में इस विद्यालय में उनका उद्‌बोधन रखा गया था तथा उन्होंने वहाँ यज्ञ भी संपन्न कराया था। इसी क्रम में वहाँ के निर्देशक श्री हुबनेर देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारे थे और उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साथ एक नए अनुबंध पर हस्ताक्षर भी किए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की पर्व परंपरा के तहत इसी अवधि में श्रद्धेय कुलाधिपति जी का जन्मदिवस—चेतना दिवस, दीपावली पर्व एवं धन्वंतरि जयंती सोल्लास मनाए गए। ❐

शिक्षा के साथ संस्कार देता एक अभिनव विश्वविद्यालय

आजकल शिक्षण संस्थान, खासकर उच्चतर शिक्षा के केंद्र चिंता का विषय बने हुए हैं। वहाँ दी जा रही शिक्षा का उद्देश्य क्या है, यह उनके द्वारा प्रस्तुत विज्ञापनों को देखकर सहज ही लगाया जा सकता है। अपने कॉलेज, संस्थान या यूनिवर्सिटी की यूएसपी का जब यहाँ जिक्र होता है, विद्यार्थियों के पैकेज पर आकर बात समाप्त हो जाती है। उन्हें कितने लाख या करोड़ का पैकेज मिला, किस मल्टीनेशनल कंपनी ने उन्हें नौकरी दी, यही चर्चा का अहम विषय रहता है। बेहतर-से-बेहतर रोजगार शिक्षा से मिले, इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। यह तो शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य है, लेकिन रोजगार में ही शिक्षा का आदि-अंत हो—यह शैक्षणिक सोच की कंगाली को दरसाता है।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास है। छात्र-छात्राओं का जिससे बौद्धिक विकास हो, भावनात्मक उन्नयन हो, आत्मिक उत्थान हो, अच्छे संस्कारों का बीजारोपण हो, चरित्र का निर्माण हो—तभी शिक्षा को सार्थक माना जाएगा। आर्थिक स्वावलंबन के साथ उनमें समाज के प्रति दायित्वबोध भी जगे, उनमें जीवनमूल्यों के प्रति आस्था पनपे, राष्ट्र एवं संस्कृति के प्रति अनुराग विकसित हो और साथ ही विश्वमानव की संवेदना का भी जागरण हो, तभी शिक्षा को पूरा एवं सार्थक माना जाएगा।

आजकल शिक्षण संस्थानों पर नजर दौड़ाने से स्थिति विकट दिखती है। कुछ तो महज डिग्री देने तक सीमित हैं, अधिक-से-अधिक फीस वसूलकर ये बड़े-बड़े सपनों को दिखाकर जनता की आँखों में धूल झोंकते रहते हैं। सारा खेल इनकी मार्केटिंग स्ट्रेटजी का होता है, जिस पर ये करोड़ों रुपये खरच करते हैं। तुरत-फुरत शॉर्टकट की तलाश में भटक रहे अभिभावक एवं युवक-युवतियाँ इनके शिकंजे में आसानी से आ जाते हैं।

कुछ संस्थानों में शिक्षा की गुणवत्ता तो बेहतर होती है, यहाँ तक कि विश्वस्तर पर वे रैंकिंग में अव्वल पाए जाते हैं, लेकिन वहाँ का वातावरण युवाओं के समग्र विकास के अनुकूल नहीं होता। पेशेवर कौशल तक सीमित ऐसे संस्थानों को भी शिक्षा की दृष्टि से आदर्श नहीं माना जा सकता, लेकिन युवाओं के सामने इनका विकल्प भी तो नहीं। दुर्भाग्य से संस्कारविहीन शिक्षा के कारण आगे चलकर ये ही प्रोफेशनल बुद्धिजीवी देश व समाज के लिए विकट समस्या बन जाते हैं। समाधान का हिस्सा बनने के बजाय वे समस्या को ही विकराल रूप देने में अपनी बुद्धि एवं प्रतिभा का नियोजन करते रहते हैं। यहाँ तक कि देशविरोधी एवं समाज को तोड़ने वाली बातें यहाँ पनप रही होती हैं, जो इन्हें मिली शिक्षा की गंभीर खामी को दरसाती हैं।

शिक्षण संस्थानों में राजनीति का अनावश्यक प्रवेश भी यहाँ के वातावरण को विषाक्त करता है, आएदिन चुनावी हिंसा की खबरों के बीच शिक्षण संस्थान लहूलुहान होते देखे जा सकते हैं। कुलपति, कुलसचिव का घेराव, कैंपस की तालाबंदी यहाँ की आम घटनाएँ रहती हैं। निश्चित रूप में ऐसी हिंसा एवं अराजकता के वातावरण के बीच गंभीर अध्ययन, अन्वेषण एवं शिक्षण की प्रक्रिया बाधित रहती है। युवाओं में स्वस्थ राजनीति की समझ विकसित हो यह समझ आता है, लेकिन शिक्षण संस्थानों को राजनीतिक हिंसा एवं अराजकता का अड्डा नहीं बनने दिया जा सकता।

ऐसे में आवश्यकता ऐसे शिक्षण संस्थानों की है, जहाँ से विद्यार्थियों को रोजगारपरक शिक्षा प्राप्त हो, उनके बौद्धिक विकास के सरंजाम उपलब्ध हों, विश्वस्तरीय शोध-अध्ययन के लायक जहाँ बौद्धिक सुविधाएँ एवं मार्गदर्शन उपलब्ध हों। बौद्धिक एवं तकनीकी कौशल विकास के साथ जहाँ जीवन-विद्या के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था हो, जहाँ के वातावरण एवं आचार्यों के उच्चस्तरीय आचरण द्वारा छात्र-छात्राओं में उन शुभ भावों एवं जीवनमूल्यों का समावेश होता हो, जिससे वे भविष्य में समाज के उपयोगी घटक के रूप में एक जिम्मेदार नागरिक एवं प्रोफेशनल के रूप में अपनी उपयोगी भूमिका निभा सकें।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय इसी दिशा में प्रयासरत उच्च शिक्षा का एक केंद्र है। युगऋषि के विजन एवं शिक्षा

दर्शन पर आधारित यह विश्वविद्यालय शिक्षा के उपरोक्त वर्णित मानकों के अनुरूप शिक्षा देने में चेष्टारत है। यहाँ के पाठ्यक्रम रोजगारपरक हैं, पाठ्यक्रम में पुरातन ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान की धाराओं का संगम-समन्वय देखा जा सकता है। ज्ञानदीक्षा के साथ प्रवेशी छात्र-छात्राएँ उच्चस्तरीय व्रत-बंधनों में दीक्षित होते हैं, निर्धारित अंतराल में सीखे गए ज्ञान का वितरण एवं पुष्टि सामाजिक इंटर्नशिप के दौरान होती है।

नियमित पढ़ाई के साथ विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा साप्ताहिक गीता एवं ध्यान की कक्षाएँ जीवन की आध्यात्मिक समझ विकसित करती हैं। वरिष्ठ आचार्यों द्वारा जीवन-प्रबंधन की कक्षाएँ जीवन जीने के सूत्रों एवं लाइफ-स्किल्ज को सिखाती हैं। पचपन से भी अधिक अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक अनुबंधों के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय सही माने में विश्वविद्यालय बनने की दिशा में अग्रसर है, जहाँ छात्रों एवं शिक्षकों का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शैक्षणिक आदान-प्रदान का क्रम चल रहा है। इसके कई पाठ्यक्रम राष्ट्रीय ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुके हैं। प्रकृति की गोद में बसे विश्वविद्यालय का स्वच्छ एवं दिव्य वातावरण सहज ही छात्र-छात्राओं में सात्त्विक भावों का संचार करता है। परिसर की अनुशासित दिनचर्या के साथ युवा मन को समाज के एक उपयोगी घटक के रूप में रूपांतरित होता देखा जा सकता है। आधुनिक नालंदा-तक्षशिला के रूप में प्रतिष्ठित हो रहे इस विश्वविद्यालय में सुपात्र विद्यार्थियों का स्वागत है। ऐसे योग्य शिक्षकों का भी भावभरा स्वागत है, जो राष्ट्रहित में शिक्षा के क्षेत्र में अपना नैष्ठिक योगदान देने के लिए संकल्पित हैं। ❑

रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—"एक हाथी है, उसे नहला-धुलाकर छोड़ दो तब फिर वह क्या करेगा? मिट्टी में खेलेगा और शरीर को फिर से गंदा कर लेगा। कोई उस पर बैठे, तो उसका शरीर भी गंदा अवश्य होगा। लेकिन यदि हाथी को स्नान कराने के बाद बाड़े में बाँध दिया जाए तब फिर हाथी अपना शरीर गंदा नहीं कर सकेगा। इसी प्रकार मनुष्य का मन भी एक हाथी के समान है। एक बार ध्यान-साधना और भगवान के भजन से वह शुद्ध हो गया तो उसे स्वतंत्र नहीं कर देना चाहिए। इस संसार में पवित्रता भी है, गंदगी भी है। मन का स्वभाव है वह गंदगी में जाएगा और मनुष्य देह को दूषित करने से नहीं चूकेगा। इसलिए उसे गंदगी से बचाए रखने के लिए एक बाड़े की जरूरत होती है, जिसमें वह घिरा रहे। गंदगी की संभावनाओं वाले स्थानों में न जा सके।

"ईश्वरभजन, उसका निरंतर ध्यान एक बाड़ा है, जिसमें मन को बंद रखा जाना चाहिए तभी सांसारिक संसर्ग से उत्पन्न दोष और मलिनता से बचाव संभव है। भगवान को बार-बार याद करते रहोगे तो मन अस्थायी सुखों के आकर्षण और पाप से बचा रहेगा और अपने जीवन के स्थायी लक्ष्य की याद बनी रहेगी। उस समय दूषित वासनाओं में पड़ने से स्वतः भय उत्पन्न होगा और मनुष्य उस पापकर्म से बच जाएगा, जिसके कारण वह बार-बार अपवित्रता और मलिनता उत्पन्न कर लिया करता है।"

जीवनलक्ष्य आशावाद के साथ

विश्व की भूमि पर झर रही है सुधा,
अब न मानव जिएगा जहर के लिए।

सांस्कृतिक बंधनों में बँधेगी धरा,
स्नेह-सहकार से फिर सजेगी धरा,
फिर न अस्तित्व होगा अविश्वास का,
दुःख-अनाचार का, शोक-संत्रास का,

व्यक्ति प्यासा न कोई तरस पाएगा,
स्नेह के सिंधु की बूँद भर के लिए।

आह मन की न विज्ञान सह पाएगा,
ध्वंस का पंथ उसको नहीं भाएगा,
धर्म विज्ञान मिलकर चलेंगे यहाँ,
नवसृजन के लिए वे ढलेंगे यहाँ,

अब नहीं युद्ध होंगे किसी भूमि पर,
खंडहर गाँव अथवा नगर के लिए।

धूप आँगन सभी के खिलेगी यहाँ,
चाँदनी एक जैसी मिलेगी यहाँ,
भोर की चेतना से भरेंगे सभी,
पतझरों की उदासी हरेंगे सभी,

अब न बेचैन कोई रहेगा यहाँ,
मौसमों या सुबह-दोपहर के लिए।

धर्म सीमित न होगा किसी धार में,
मंदिरों-मस्जिदों, ग्रंथ-गुरुद्वार में,
धर्म की स्वस्थ छाया रहेगी जहाँ,
प्रीति-ममता-सुगमता रहेगी वहाँ,

मानवों का रुधिर फिर न बह पाएगा,
धर्म की क्रूर पागल लहर के लिए।

—शचीन्द्र भटनागर







खेल महोत्सव एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम 22 नवंबर, 2019
गायत्री विद्यापीठ शांतिकुंज-हरिद्वार



ईरान से पधारे बुद्धिजीवियों के विशेष प्रतिनिधिमंडल द्वारा श्रद्धेय से भेंट-परामर्श

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-01-2020
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020



कन्या किशोर कौशल अभिवर्द्धन प्रशिक्षक प्रशिक्षण सत्र उत्तर प्रदेश
4 से 8 दिसंबर, 2019 शांतिकुंज हरिद्वार



गायत्री विद्यापीठ के प्रतिभाशाली स्काउट गाइड 'राज्यपाल पुरस्कार' से सम्मानित

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक- डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष- 0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.- 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
फैक्स-0565 2412273 ईमेल- ajsansthan@awgp.org